उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१२ १९९३—अक्टूबर अंक—१०

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन। ०६१५२-४२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	३० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	४५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

* देखो, किसान बाजार से बैल खरीदते हैं। वे जानते हैं कि कौन-सा बैल अच्छा है और कौन-सा बुरा। वे पूँछ के नीचे हाथ लगाकर परखते हैं। कोई-कोई बैल पूँछ पर हाथ लगाने से लेट जाते हैं। वे ऐसे बैल नहीं खरीदते। पर जो बैल पूँछ पर हाथ रखते ही बड़ी तेजी से कूद पड़ता है, उसी बैल को वे चुन लेते हैं। नरेन्द्र इसी बैल की जाति का है। भीतर खूब तेज है।

* इस लड़के (नरेन्द्र) को यहाँ एक प्रकार देखते हो। चुलबुला लड़का जब बाप के पास बैठता है, तब चुपचाप बैठा रहता है और जब चाँदनी पर खेलता है, तब उसकी और ही मूर्ति हो जाती है। ये लड़के नित्यसिद्ध हैं। ये कभी संसार में नहीं बँधते। थोड़ी ही उम्र में इन्हें चैतन्य होता है, और ये ईश्वर की ओर चले जाते हैं। ये संसार में जीवों को शिक्षा देने के लिए आते हैं।

* नरेन्द्र-सा एक भी लड़का मुझे अब तक नहीं दिखायी पड़ा। जैसा गाने-बजाने में, वैसा पढ़ने-लिखने में, वैसा ही बातचीत में और फिर धर्म-विषय में भी! वह रात भर ध्यान करता है, ध्यान करते करते भोर हो जाता है, होश नहीं रहता।

* मेरे नरेन्द्र के भीतर थोड़ी भी कृत्रिमता नहीं है। बजाकर देखो, तो ठन-ठन शब्द होता है।.....हँसते-खेलते सब काम करता है, पास करना उसके लिए कोई बात नहीं।.....वह यथार्थ ब्रह्मज्ञानी है। ध्यान करने के लिए बैठते ही उसे ज्योतिदर्शन होता है; उसे मैं यों ही प्यार नहीं करता!

* नरेन्द्र संसार को उलट-पुलट कर रख देगा।

श्रीदुर्गा स्तवराजः

नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकल्पे
नमस्ते जगद्व्यापिके विश्वरूपे ।
नमस्ते जगद्वन्द्यपादारविन्दे
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥१

नमस्ते जगच्चिन्त्यमानस्वरूपे
नमस्ते महायोगिनि ज्ञानरूपे ।
नमस्ते सदानन्दनन्दस्वरूपे
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥२

अनाथस्य दीनस्य तृष्णातुरस्य
क्षुधार्तस्य भीतस्य बन्धस्य जन्तोः ।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तारकर्त्री
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥३

अरण्ये रणे दारुणे शत्रुमध्ये—
ऽनले सागरे प्रान्तरे राज गेहे ।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तार हेतु—
र्नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥४

अपारे महादुस्तरेऽत्यन्त घोरे,
विपत् सागरे मज्जतां देह भाजाम् ।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तार नौका
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥५

इदं स्तोत्रं मया प्रोक्तमापदुद्धार हेतुकम् ।
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यां वा पठनादेव संकटात् ॥

मुच्यते नात्र सन्देहो भुवि स्वर्गे रसातले ।
समस्त श्लोकमेकं वा यः पठेत् भक्तितः सदा ॥

स सर्व दुष्कृतिं तीर्त्वा प्राप्नोति परमां गतिम् ।
पठनादस्य देवेशि किं न सिध्यति भूतले ॥

शिकागो धर्ममहासभा और रामकृष्ण भावधारा

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

आज से सौ वर्ष पूर्व शिकागो में आयोजित विश्व धर्म महासभा विश्व के धर्मेतिहास की एक विलक्षण, अविस्मरणीय ऐतिहासिक घटना थी। यद्यपि इसके पूर्व भी विश्व के विभिन्न धर्मों की अपनी अलग अलग परिषदें और सभाएँ आयोजित हो चुकी थीं पर एक ही मंच पर विश्व के प्राचीनतम से लेकर अर्वाचीनतम धर्मों के प्रतिनिधियों ने पहली बार परस्पर धार्मिक विचार-विमर्श किया था। संसार के नवीनतम राष्ट्र अमेरिका को विश्व के प्राचीनतम धर्मों का सम्मेलन बुलाने का गौरव मिला था। यहीं विभिन्न धर्मों के मूल स्वर विश्व धर्म सभा की वीणा से झंकृत हुए थे। एकता, सहयोग, सहिष्णुता और स्वीकृति की भैरवी वाणी पहली बार यहीं स्वामी विवेकानन्द के कण्ठ की अग्नि वीणा से गूँजी थी और यहीं से श्रीरामकृष्ण की भावधारा की उत्ताल तरंगों से पहली बार विश्व स्पन्दित हुआ था।

रामकृष्ण-विवेकानन्द : एक ही सत्ता के दो रूप

यद्यपि रामकृष्ण भावधारा की गंगोत्री स्वयं श्रीरामकृष्ण हैं किन्तु श्री माँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द के साथ मिलकर वे स्वयं मानो त्रिगंग हो गये हैं। एक ही ब्रह्म-भाव के सर्वोच्च हिमशैल के ये तीनों दैवी विग्रह मानो उत्तुंग त्रिकूट हो गये हैं। एक ही परम दिव्य अनाहत संगीत की ये तीनों मानो हियहारी झंकृतियाँ हो गये हों। ये प्रणम्य त्रिदेव मानो एक ही अध्यात्म के पीयूष-पारावार की व्योमचुम्बी तीन तरंगे हो गये हों। अतएव, ११ सितम्बर, १८९३ को शिकागो में आयोजित ऐतिहासिक विश्व-धर्म-महासभा के मंच पर स्वामी विवेकानन्द के रूप में मानो स्वयं श्रीरामकृष्ण उपस्थित हो गये थे। उस धर्म-महासभा में स्वामी विवेकानन्द के मुख से धर्म तत्व और अध्यात्म का जो ब्रह्म-वारि निःसारित हुआ था उसमें रामकृष्ण भावधारा की ही उत्ताल तरंगें उच्छलित हुई थीं।

श्रीरामकृष्ण की प्रकृति अत्यन्त कोमल और मृदुल थी। उनका शरीर मानवता के मंगल-साधन के लिए किये जाने वाले कठोर परिश्रम के उपयुक्त नहीं था। उन्हें ऐसे सुदृढ़ व्यक्ति की आवश्यकता थी जिसको यन्त्र बनाकर, जिसके माध्यम से वे अपना कार्य सुचारु रूप से संचालित कर सकते थे। नरेन्द्रनाथ (कालान्तर में स्वामी विवेकानन्द) के रूप में उन्हें मानो अपना यन्त्र मिल गया। जब

नरेन्द्रनाथ ने विश्व ब्रह्माण्ड को नियन्त्रित और संचालित करने वाली जगन्माता काली की सत्ता स्वीकार कर ली तो श्रीरामकृष्ण के आह्लाद की सीमा न रही। अब नरेन्द्रनाथ सर्वांशतः श्रीरामकृष्ण के भावराज्य के समर्थ अधिकारी हो चुके थे। और श्रीरामकृष्ण भी पूर्णतः आश्वस्त हो चुके थे। अब शरीर को बचाये रखने की आवश्यकता नहीं थी। स्वामीजी ने कालांतर में स्वयं कहा था—"मुझे जगदम्बा के हाथों में सौंपने के बाद सिर्फ छः महीने तक ही उनकी शारीरिक शक्ति बरकरार रही। शेष दो दीर्घ वर्षों तक वे कष्ट भोगते रहे।"

फुसफुसाकर भी बोलने में जब श्रीरामकृष्ण गले के रोग के कारण असमर्थ थे तब एक दिन उन्होंने कागज के एक टुकड़े पर लिखा—"नरेन्द्र जगत् को शिक्षा देगा।" जब नरेन्द्रनाथ ने अपनी अनिच्छा व्यक्त की तो उन्होंने कहा,—"तुझे करना ही होगा। तेरी हड्डियाँ करेंगी।" फिर उन्होंने यह भी बताया कि उनके द्वारा अर्जित अलौकिक शक्तियाँ भी उनके प्रिय शिष्य के ही माध्यम से कार्यकर होंगी।

इतना ही नहीं, अपने लीला-संवरण के कुछ ही दिनों पहले श्रीरामकृष्ण ने एक दिन अपने प्रिय शिष्य नरेन (नरेन्द्रनाथ) को अपने निकट बुलाकर उनकी ओर निर्निमेष नेत्रों से देखना शुरू किया। थोड़ी ही देर पश्चात् वे गम्भीर समाधि में लीन हो गये। नरेन्द्रनाथ को प्रतीत हुआ कि विद्युत प्रवाह की भाँति एक सूक्ष्म शक्ति उनके भीतर प्रवेश करती जा रही है। धीरे-धीरे अपनी बाह्य चेतना खोकर वे अचेत हो गये। कुछ देर पश्चात् चेतना लौटने पर उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्ण रुदन कर रहे हैं। फिर उन्होंने नरेन्द्रनाथ से कहा—"नरेन ! तुझे अपना सर्वस्व देकर आज मैं फकीर हो गया। इस शक्ति के द्वारा तू जगत् का बहुत सारा कार्य सम्पन्न करेगा, और उसके समाप्त होते ही अपने मूल स्थान को लौट जायेगा।"

ये सारी घटनाएँ सिद्ध करती हैं कि नरेन्द्रनाथ के माध्यम से स्वयं श्रीरामकृष्ण अपना कार्य कर रहे थे। श्रीरामकृष्ण के रूपान्तरण का नाम ही विवेकानन्द है। विवेकानन्द मानो श्रीरामकृष्ण के अमृतमय भावों का अक्षर शिलालेख हैं। दोनों कनक व कुण्डल की भाँति, कस्तूरी और गंध की भाँति, हिम और शीतलता की भाँति अभिन्न हैं, एकीभूत हैं।

शिकागो धर्म महासभा में स्वामी विवेकानन्द का योगदान

शिकागो विश्व-धर्म-महासभा का आयोजन यद्यपि किसी एक धर्म को विश्व के अन्य धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ सिद्ध कर उसे सार्वजनीन स्वीकृति प्रदान करने की मानसिकता से हुआ था लेकिन घटनाक्रम से ऐसा सिद्ध होता है मानो उक्त महासभा का आयोजन श्रीरामकृष्ण की भावधारा के प्रचार-प्रसार और प्रस्वीकृति के लिए ही हुआ था। अमेरिका जाने के क्रम में एक दिन मानो इसी सत्य की पूर्व उद्घोषणा करते हुए स्वामीजी ने अपने गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्द जी से एक विलक्षण बात कही थी, "हरि भाई! अमेरिका जा रहा हूँ, वहाँ जो कुछ हो रहा है तुम सुन रहे हो, सब इसी के लिए (अपनी छाती की ओर दिखाते हुए) हो रहा है।" और हम देखते हैं कि इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया कि स्वामीजी की बातें अक्षरशः सत्य थीं।

१२ जनवरी, १८६३ ई० को कलकत्ते के श्रीविश्वनाथ दत्त के घर में जो नर-ऋषि अवतरित हुए थे उनका नाम नरेन्द्रनाथ था और ११ सितम्बर १८९३ ई० को शिकागो के विश्व-धर्म-महासभा के मंच पर जो नरोत्तम नरेन्द्रनाथ प्रकट हुए थे उनका नाम विवेकानन्द था। अर्थात् १२ जनवरी, १८६३ को विवेकानन्द के शरीर का आविर्भाव हुआ था किन्तु उनके आध्यात्मिक ऊर्जा सम्पन्न विश्व-गुरु रूप का, उनके वास्तविक तेजस्वी व्यक्तित्व का, और उनके लोक हितकारी स्वरूप का उद्घाटन तो शिकागो के मंच पर ही हुआ था।

शिकागो को विश्वधर्म-महासभा में स्वामी विवेकानन्द का योगदान कई दृष्टियों से अधिक महत्व रखता है। इसी महासभा के मंच से उन्होंने अखिल विश्व को धर्म के सम्बन्ध में एक सर्वथा व्यापक, विलक्षण और अभिनव दृष्टि प्रदान की थी। इस महासभा का आरम्भ एक ऐसी दृष्टिभगी से हुआ था कि 'एक धर्म दूसरे धर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ है।' किन्तु इस धर्म सम्मेलन का समापन श्रीरामकृष्णदेव द्वारा अनुभूत एवं बारम्बार कथित इस सिद्धान्त से हुआ कि सभी धर्म समान हैं। इसी धर्म महासभा के अन्तिम अधिवेशन में भाषण करते हुए २७ सितम्बर, १८९३ ई० को स्वामी जी ने उदयगिरि के मंच पर उदित नवारुण के प्रकाश की भाँति दीप्त घोषणा की—"इस धर्म-महासभा ने जगत् के समक्ष यदि कुछ प्रदर्शित किया है, तो वह यह है : उसने यह सिद्ध कर दिया है कि शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी सम्प्रदाय विशेष की ऐकान्तिक सम्पत्ति नहीं हैं, एवं प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ एवं अतिशय उन्नत चरित्र स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है। अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जाएँगे और केवल उसका धर्म ही जीवित रहेगा, तो उस पर मैं अपने हृदय के अन्तस्तल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बतलाये देता हूँ कि शीघ्र ही सारे प्रतिरोधों के बावजूद, प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा—'सहायता करो, लड़ो मत।' 'पर-भाव—ग्रहण, न कि पर-भाव-विनाश'; 'समन्वय और शान्ति, न कि मतभेद और कलह!'

इसी धर्म महासभा में १९ सितम्बर, १८९३ को स्वामीजी ने पश्चिमी जगत् के समक्ष हिन्दू धर्म के उन सारभूत तत्वों की वह वैज्ञानिक और तलस्पर्शी संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की थी जिसने पश्चिमी जगत् के मन में हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में स्थित भ्रान्त धारणाओं को उच्छिन्न और उत्पाटित कर दिया था।

इसी धर्म महासभा में स्वामीजी ने पाश्चात्य जगत् के समक्ष भारतीय धर्म, संस्कृति और आध्यात्मिक परंपरा का ऐसा गौरव-गान किया था जिसने न केवल पाश्चात्य देशवासियों को ही भारतीय जीवन-दृष्टि के प्रति विनत कर दिया था बल्कि पारभूत, पददलित, पीड़ित और विमूर्च्छित भारतवासियों के मन में भी अपने गौरवमय अतीत, अत्युच्च सांस्कृतिक-सम्पदा और समुन्नत जीवन-शिल्प के प्रति गौरव-बोध का ज्वार जगा दिया। इस धर्म महासभा के पहले ही दिन स्वामीजी ने शार्दूल कण्ठ से घोषणा की—"मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हुँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनों की ही शिक्षा दी है। हमलोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीड़ितों और

शरणार्थियों को आश्रय दिया है। मुझे आपको यह बतलाते हुए गर्व होता है कि हमने अपने वक्ष में यहूदियों के विशुद्धतम अवशिष्ट अंश को स्थान दिया था, जिन्होंने दक्षिण भारत आकर उसी वर्ष शरण ली थी जिस वर्ष उनका पवित्र मन्दिर रोमन जाति के अत्याचार से धूल में मिला दिया गया था। ऐसे धर्म का अनुयायी होने में मैं गर्व करता हूँ, जिसने महान् जरथुष्ट्र जाति के अवशिष्ट अंश को शरण दी और जिसका पालन वह अब तक कर रहा है।"

इस शिकागो की धर्ममहासभा के मंच से ही धार्मिक सहिष्णुता की महान् शिक्षा विश्ववासियों को देते हुए उन्होंने कहा था—"सम्प्रदायिकता, हठधर्मिता, और उनकी बीभत्स धर्मान्धता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी है। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को विध्वस्त करती और पूरे-पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही हैं। यदि ये वीभत्स दानवी न होतीं, तो मानव-समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है और मैं आंतरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घटा ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होने वाले सभी उत्पीड़नों का, तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु -निनाद सिद्ध हो।"

हिन्दु धर्म पर अपना निबन्ध प्रस्तुत करते हुए शिकागो धर्म महासभा में स्वामीजी ने न केवल हिन्दू धर्म के मूल आधार पर प्रकाश डाला था बल्कि उन्होंने वास्तविक धर्म की भी व्याख्या प्रस्तुत की थी। उन्होंने कहा था—"सतत अध्यवसाय द्वारा पूर्ण बन जाना, दिव्य बन जाना, ईश्वर को प्राप्त करना और उसके दर्शन कर लेना; और ईश्वर सान्निध्य को प्राप्त होकर, उसके दर्शन कर लेना, उस सवर्गस्थ पिता के समान पूर्ण हो जाना—हिन्दुओं का धर्म है।" अन्त में उन्होंने कहा था—"यदि कभी कोई सार्वभौमिक धर्म होना है, तो वह किसी देश या काल से सीमाबद्ध नहीं होगा, वह उस असीम ईश्वर के सदृश ही असीम होगा, जिसका वह उपदेश देगा जिसका सूर्य श्रीकृष्ण और ईसा के अनुयायियों पर, सन्तों पर और पापियों पर समान रूप से प्रकाश विकीर्ण करेगा, जो न तो ब्राह्मण होगा, न बौद्ध, न ईसाई और न इस्लाम, वरन इन सबकी समष्टि होगा, किन्तु फिर भी जिसमें विकास के लिए अनन्त अवकाश होगा; जो इतना उदार होगा कि पशुओं के स्तर से किंचित् उन्नत निम्नतम घृणित जंगली मनुष्य से लेकर अपने हृदय और मस्तिष्क के गुणों के कारण मानवता से इतना ऊपर उठ गये उच्चतम मनुष्य तक को, जिसके प्रति सारा समाज श्रद्धानत हो जाता है, और लोग जिसके मनुष्य होने में सन्देह करते हैं, अपनी बाहुओं से आलिंगन कर सके और उनमें सबको स्थान दे सके।"

विश्वधर्म-महासभा के सम्मुख स्वामीजी के अभिभाषण के सम्बन्ध में भगिनी निवेदिता का कथन है—"भारत की धार्मिक चेतना—सम्पूर्ण अतीत द्वारा निर्धारित उनके समग्र देशवासियों का सन्देश ही उनके माध्यम से मुखर हुआ था।" आगे वे कहती हैं—"भारत के पास जो अपनी ही निधियाँ सुरक्षित हैं, भारत के ही प्रति उनके मात्र उद्घाटक और भाष्यकार के रूप में ही स्वामीजी का महत्त्व है। यदि वे कभी जन्म ही न लेते, तो भी जिन सत्यों का उपदेश उन्होंने किया, वे वैसे सत्य बने रहते। अन्तर केवल इतना होता, उनकी प्राप्ति की कठिनाई में, उनकी अभिव्यक्ति में आधुनिक स्पष्टता और तीक्ष्णता

के अभाव में और उनके पारस्परिक सामंजस्य एवं एकता की हानि में, यदि वे न होते तो आज सहस्रों लोगों को जीवनदायी सन्देश प्रदान करने वाले वे ग्रन्थ पण्डितों के विवाद के विषय ही बने रह जाते। उन्होंने एक पण्डित की भांति नहीं, एक अधिकारी व्यक्ति की भाँति उपदेश दिया। क्योंकि जिस सत्यानुभूति का उपदेश उन्होंने किया, उसकी गहराइयों में वे स्वयं ही गोता लगा चुके थे और रामानुज की भांति उसके रहस्यों को चाण्डाल, जाति-बहिष्कृत और विदेशियों को बतलाने के निमित्त ही वे वहाँ से लौटे थे।" स्वामी विवेकानन्द ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों को ईश्वर प्राप्ति का साधन मानते थे। भगिनी निवेदिता के शब्दों में "उनके लिए कारखाना, अध्ययन-कक्ष, खेत और क्रीड़ाभूमि आदि भगवान् के साक्षात्कार के वैसे ही उत्तम और योग्य स्थान है, जैसे साधु की कुटी या मन्दिर का द्वार। उनके लिए मानव की सेवा और ईश्वर की पूजा, पौरुष तथा श्रद्धा, सच्चे नैतिक बल और आध्यात्मिकता में कोई अन्तर नहीं है। एक बार उन्होंने कहा था, 'कला, विज्ञान एवं धर्म एक ही सत्य की अभिव्यक्ति के त्रिविध माध्यम है। लेकिन इसे समझने के लिए अद्वैत का सिद्धान्त चाहिए :"

शिकागो धर्म महासभा में स्वामी विवेकानन्द के कण्ठ से रामकृष्ण भावधारा की जो स्वर लहरी उद्गीर्ण हुई थी वह शंखध्वनि की भाँति आज सारे विश्व में गुंजित-अनुगुंजित हो रही है। आवश्यकता है उसे आज हम अपने जीवन में उतारें। सत्य का जो सूर्य शिकागो के धर्म मंच पर विवेकानन्द की वाणी के रूप में उदित हुआ था उसकी प्रकाश-किरणें हमारे आपके जीवन को अपने स्वर्णिम आलोक से भर दे, यही प्रार्थना है।

"सब लोग तो मरने बैठे हैं पर तू तो मृत्यु को जीतने आया है। महाबीर की तरह अग्रसर हो जाओ किसी की परवाह न कर, कितने दिनों के लिए है यह शरीर ? कितने दिनों के लिए हैं ये सुख दुःख ? यदि मानव शरीर को ही प्राप्त किया है, तो भीतर की आत्मा को ही जगा और बोल "मैंने अभय-पद प्राप्त कर लिया है :" बोल—मैं वही आत्मा हूँ जिसमें मेरा यह क्षुद्र 'अहंभाव' लीन हो गया है।" इसी तरय सिद्ध बन जा; उसके बाद जितने दिन यह देह रहे, उतने दिन दूसरों को यह महावीर्य पद अभयवाणी सुना—'तत्वमसि,' 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत'।

—स्वामी विवेकानन्द

भाषण

स्वामीजी की भारत-परिक्रमा और शिकागो धर्म महासभा में योगदान का तात्पर्य

—श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
परमाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन
अनुवादक—डॉ० केदारनाथ लाभ

स्वामी विवेकानन्द का आविर्भाव मानव सभ्यता के इतिहास में एक नये अध्याय का सूचक है। वे संसार को जो सन्देश देने आये थे, उसकी तैयारी विश्व-धर्म महा सम्मेलन में योगदान करने के बहुत पहले से ही हो रही थी। श्रीरामकृष्ण के युग प्रवर्तन के कार्य में उनके सहायक के रूप में स्वामीजी की तैयारी दक्षिणेश्वर में श्रीगुरुदेव के चरणों तले शुरू हुई। श्रीरामकृष्ण में स्वामीजी ने अपने धर्म के वास्तविक रूप को, अपने मन में यत्नपूर्वक पालित धर्म के यथार्थ स्वरूप को ढूँढ़ निकाला था। उनके चरणों तले बैठकर ही अपने धर्म-जीवन की साधना को उन्होंने कई दिशाओं में विकसित किया था। श्रीरामकृष्ण थे सभी धर्मों की महा मिलन-भूमि। ऐसा कोई धर्म-सिद्धांत नहीं है, जो उनमें समाहित नहीं हो गया। उनके उदार मतवाद, अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता आदि ने समान रूप से स्वामीजी के जीवन को प्रभावित कर पूर्ण रूप प्रदान किया था।

श्रीरामकृष्ण ने स्वयं विवेकानन्द को अपने संदेशवाहक के रूप में रेखांकित किया था और इसके लिए 'अखण्ड के घर' से उन्हें पृथ्वी पर उतार लिया था। श्रीरामकृष्ण की भावराशि, जो संसार को धर्म का एक नया रूप देगी, उसके रूपायण का महाव्रत स्वामीजी ने उनकी प्रेरणा से ही ग्रहण किया था। उनके गुरु ने इसके निमित्त उन्हें विशुद्ध रूप से अपने हाथों गढ़ा था। स्वामीजी ने स्वयं परिकल्पना कर कोई कर्मधारा नहीं शुरू की, उन्होंने केवल एक प्रबल प्रेरणा का अनुभव किया था, जिसने उन्हें समस्त भारत का परिभ्रमण कराया था। इस परिक्रमा के परिणामस्वरूप स्वामीजी के हृदयपट पर उग आया था भारत का एक पूर्णांग रूप—उसका अतीत, वर्तमान और भविष्य। भारत के उज्ज्वल अतीत से वर्तमान दुर्दशा की वेदनामय अनुभूति ने उनके हृदय को आलोड़ित कर दिया था और मातृभूमि को पुनः जाग्रत कर उसके भविष्य को एक ऐसी समुज्ज्वल स्थिति में उन्होंने प्रतिष्ठित करना चाहा था, जिसकी प्रभा उसके गौरवोज्ज्वल अतीत को भी म्लान कर देगी। ठीक उसी समय दैवनिर्देश से उन्होंने शिकागो के धर्म महासम्मेलन में योगदान करने की प्रेरणा का हृदय से अनुभव किया था। विदेश यात्रा करने के पूर्व ही उन्होंने स्वामी तुरीयानन्द को कहा भी था—'हरिभाई, वहाँ (शिकागो में) जो कुछ हो रहा है, सब (अपनी छाती पर हाथ रख कर) इसके लिए ही। इसी के लिए सब हो रहा है।" उन्होंने और भी कहा था—"हरि भाई मैं अभी भी तुमलोगों के तथा-कथित धर्म के विषय में कुछ नहीं जानता। किन्तु मेरा हृदय बहुत विशाल हो गया है और मैंने दूसरों के दुख का अनुभव करना सीख लिया है।" स्वामीजी के इस भावावेग को देखकर स्वामी तुरीयानन्द को प्रतीत हुआ था कि उन्होंने साधना समाप्त कर ली है और वे संसार में गुरु के सन्देश का प्रचार करने जा रहे हैं। हमलोग जानते हैं कि स्वामीजी की विदेश-यात्रा के पीछे जिस प्रकार श्रीरामकृष्ण की सम्मति और निर्देश थे, उसी प्रकार श्री श्री माँ की अनुमति और आशीर्वाद भी थे।

३१ मई, १८९३ को स्वामीजी ने शिकागो जाने के उद्देश्य से भारतवर्ष से विदा ली थी। इतने दिनों के बाद उनका स्वप्न वास्तविकता में रूपान्तरित हो रहा है—वे भारत की उपदेशयुक्त वाणी का प्रचार करेंगे, जो वाणी भारत और विश्व का कल्याण साधन करेगी। उनके मन में द्वन्द्व भी हो रहा था। वह द्वन्द्व था कि एक अज्ञात देश में, एक अपरिचित परिवेश में वे पदार्पण करने जा रहे हैं, वहाँ सम्भवतः अनेक आपदाओं का सामना करना होगा।

स्वामीजी के जीवन के परवर्ती अध्याय के सम्बन्ध में हम सब परिचित हैं। समस्त आपदाओं विपदाओं को पार करते हुए उन्होंने अपनी महिमा से धर्म महासभा में स्वयं को प्रतिष्ठित किया था। धर्ममहसभा में वे ही सबके मध्यमणि थे। उनके द्वारा दिये गये भाषणों ने श्रोताओं के मन में नूतन भावों का संचार किया था। धर्म का यथार्थ स्वरूप उनमें उद्घाटित हुआ था। विश्व-मानव के समक्ष धर्म के कल्याणकारी उपदेश का उन्होंने प्रचार किया था। उन्होने कहा था—

'साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी वीभत्स वंशधर धर्मान्धता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी है। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको वारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को विध्वस्त करती और पूरे-पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही है। यदि ये वीभत्स दानवी न होती तो मानव-समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है, और मैं आन्तरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घटा ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होने वाले सभी उत्पीड़नों का, तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु-निनाद सिद्ध हो।

स्वामीजी का उनका यह उदात्त आह्वान शिकागो धर्म महासभा के अन्तर्राष्ट्रीय मंच से समग्र विश्व को बताने के लिए धर्म महासभा में उनके प्रथम दिन के भाषण में किया गया था। उन्होंने कहा था, पृथ्वी पर स्थायी शान्ति की प्रतिष्ठा की भित्ति भारतवर्ष का मार्ग और आदर्श हो सकते हैं। भारतवर्ष अति प्राचीनकाल से 'अन्य मतों के प्रति सहिष्णुता' और 'सभी मतों को स्वीकार' करने की शिक्षा देता आ रहा है। किस प्रकार भारतवर्ष ने उस उपदेश और आदर्श को वास्तविक रूप प्रदान किया है, उसका इतिहास भी स्वामीजी ने अपने उक्त संक्षिप्त भाषण में बताया था। उन्होंने कहा था, प्राचीन काल में यहूदी जब अपनी मातृभूमि से निर्वासित होकर आश्रय की खोज में भारतवर्ष आये थे तब भारतवर्ष ने उन्हें आदरपूर्वक अपने हृदय में धारण किया था। प्राचीन फारस से जरथुष्ट्र धर्मावलम्बियों ने अपने देश के अत्याचार से पीड़ित होकर भारतवर्ष में आकर आश्रय पाया था। जब कभी संसार के अन्य किसी देश में वहाँ के निवासी समाज या धर्मविद्वेष का शिकार होकर आश्रय की तलाश में निकले हैं, तब वे निश्चिन्त भाव से भारतवर्ष में आये हैं। इसका कारण यह है कि वे जानते थे—भारतवर्ष सदा से सभी धर्मों और सभी जातियों के निपीड़ित और आश्रय के आकांक्षी लोगों का चिर विश्वस्त आश्रय स्थल है। स्वामी जी ने अपने भाषण में कहा था, भारतवर्ष की पवित्र संस्कृत भाषा में अंग्रेजी के 'एक्जक्लुशन' (Exclusion) शब्द का अनुवाद नहीं किया जा सकता है। भारतवर्ष के इतिहास में वर्जन एवं वहिष्कार अस्वीकृत हैं, यह इसके द्वारा प्रमाणित होता है।

धर्म महासभा में प्रदत्त अपने प्रत्येक भाषण में स्वामीजी ने भारत के उदार आदर्श, भारत की शान्ति, समन्वय और सोहार्द्र के उपदेश को सशक्त भाषा में अभिव्यक्त किया था। कूपमण्डूक की भाँति संकीर्ण मनोभाव को त्यागकर उदार और मुक्त मनोभाव से सभी मतों और मार्गों को, सभी धर्म सिद्धान्तों और सम्प्रदायों को जानने, देखने और स्वीकार करने का आह्वान स्वामीजी ने किया था। धर्म महसभा के समापन-दिवस के भाषण में भी स्वामीजी ने इसी एक उपदेश का पुनर्कथन किया था। उस भाषण में स्वामीजी ने समस्त संकीर्णताओं के ऊपर धर्म के महान आदर्श की स्थापना की थी और उदात्त कंठ से घोषणा की "यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जायेंगे और केवल उसका धर्म ही जीवित रहेगा, उस पर मैं अपने हृदय के अन्तस्तल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बतलाये देता हूँ कि शीघ्र ही सारे प्रतिरोधों के बावजूद, प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा—'सहायता करो, लड़ो मत।' 'पर-भाव-ग्रहण, न कि परभाव-विनाश', 'समन्वय और शान्ति, न कि मतभेद और कलह।"

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर हम देखेंगे कि धर्म महासभा ने ही सर्वप्रथम संसार में एक धर्म के साथ अन्य धर्म का प्रीति मूलक संवाद (Dialogue) या आजकल जिसे 'तुलनात्मक धर्म' (Comparative Relegion) कहते हैं, उसकी परिचर्चा का क्षेत्र प्रस्तुत किया था। परन्तु धर्म महासभा में इस विषय में सब से सशक्त एवं लोकप्रिय प्रवक्ता के रूप में स्वामी विवेकानन्द ने स्वयं को उपस्थित किया था। आज सारे विश्वमें मिलकर ही स्थायी शान्ति-स्थापना के लिए विवेचन और आन्दोलन हो रहे हैं। परन्तु ये आन्दोलन और विवेचनाएँ कहाँ तक आन्तरिक हैं, यह संशयास्पद है। आज देश और विदेशों में चिन्तनशील लोग विश्वास करते हैं कि स्वामीजी के इस उपदेश का अनुसरण करने पर ही शांति और समृद्धिमय विश्व का गटन करना सम्भव होगा। आज जाति-जाति में, धर्म-धर्म में, समुदाय-समुदाय में जो प्रलयंकर द्वन्द्व चल रहा है, उसके समाधान के सारे प्रयास व्यर्थ हो रहे हैं। इसका कारण यह है कि दूसरे को ठीक करने का हमलोगों का जो प्रयास है, उससे कहीं अधिक आवश्यक है हमलोगों को स्वयं अपने को शुद्ध करने का प्रयास—इस सम्बन्ध में हमलोगों की चेतना का जागरण अब भी नहीं हुआ है। स्वामीजी ने आशा की थी कि उनके महाव्रत के आह्वान से भारतवासी अपनी दीर्घ निद्रा तोड़कर उनके नवयुग के स्वप्न को सफल करने के लिए प्राणों से उत्तर देंगे और सक्रिय रूप से इस व्रत में हिस्सा लेंगे। उनकी वह आशा अब भी पूरी तरह सफल नहीं हुई है। फिर भी आज उनके आह्वान ने केवल भारत ही नहीं सारे संसार में एक आलोड़न उत्पन्न कर दिया है, इस विषय में कोई सन्देह नहीं। मैं ठाकुर श्रीरामकृष्ण, श्री माँ और स्वामीजी के चरणों में प्रार्थना करता हूँ कि हम महायुग सन्धि के इन क्षणों में स्वामीजी के स्वप्न को सफल करने की प्रेरणा का अनुभव करें और हमलोग अपने जीवन को इस महान कार्य में समर्पित करने के लिए उत्साहित हों।*

---

*काँकुड़ गाछी रामकृष्ण योगोद्यान मठ में आयोजित विश्वधर्म सम्मेलन के उद्देश्य से स्वामी विवेकानन्द की समुद्रयात्रा की शताब्दी के उपलक्ष्य में ३१ मई, १९९३ से तीन दिनों के अनुष्ठान के प्रथम दिन उद्घाटन समारोह में प्रदत्त आशीर्वचन 'उद्बोधन' के सितम्बर, ९३ विशेषांक से साभार अनूदित।

धर्म-महासभा पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव

स्वामी निखिलेश्वरानन्द
श्री रामकृष्ण आश्रम
राजकोट, गुजरात

"अमेरिकावासी बहनो और भाइयो"--इन शब्दों के साथ स्वामी विवेकानन्द ने ११ सितम्बर १८९३ को शिकागो की धर्म-महासभा में अपना प्रथम व्याख्यान प्रारंभ किया। दूसरा शब्द बोलने के पूर्व उस मंच पर बैठे सभी धर्मों के प्रख्यात प्रतिनिधि और लगभग सात हजार श्रोता उत्साह की उत्तुंग लहर से भर गये, सैकड़ों लोग अपनी-अपनी जगह पर खड़े होकर जोरों की तालियाँ बजाने लगे। धर्म-महासभा उन्मत्त हो गयी थी, हर व्यक्ति बारम्बार जयजयकार की तालियाँ बजाता रहा और जब करतल-ध्वनि—जो कई मिनटों तक होती रही थी—थमी, स्वामी विवेकानन्द ने विश्व के कनिष्ठतम देश को, विश्व के प्राचीनतम धर्माचार्यों एव वैदिक ऋषियों की ओर से धन्यवाद देकर तथा जिसने सम्पूर्ण विश्व को सहिष्णुता और सार्वभौम प्रेम (स्वीकार) की शिक्षा दी थी, उस हिन्दू-धर्म को सभी धर्मों की जननी के रूप में परिचित कराते हुए अपना भाषण प्रारम्भ किया। यह एक लघु वार्ता थी मगर इसकी सार्वजनीनता, इसकी मौलिक गंभीरता तथा उदार मानसिकता ने सम्पूर्ण महासभा को वशीभूत कर लिया। चतुर्दिक करतल-ध्वनि होती रही।

इस प्रकार भारत का वह अज्ञात परिव्राजक तुरंत एक विश्व प्रसिद्ध व्यक्ति हो गया। शिकागो की गलियों में उनके आदमकद चित्र लगाये गये। दो दिन पूर्व स्वामीजी को शिकागो रेलवे स्टेशन की मालगाड़ी के डब्बे में पूरी रात किस तरह निर्वासित, अज्ञात एवं असहाय व्यक्ति की तरह बितानी पड़ी थी! मगर अब धनवानों की अट्टालिकाओं के द्वार उनके शानदार स्वागत के लिए खुले हुए थे। धर्म-महासभा में स्वामी जी की सफलता अनुपम थी।

महानगरीय अत्यन्त प्रसिद्ध एवं रुढ़िवादी समाचार-पत्रों ने उन्हें एक "पैगम्बर और एक भविष्य-द्रष्टा के रूप में उद्घोषित किया। "न्यूयार्क हेराल्ड" ने लिखा—"वे धर्म-महासभा में निस्संदेह महानतम व्यक्ति थे। उन को सुनने के बाद हम लोग महसूस करते हैं कि उन ज्ञानी राष्ट्र में धर्म-प्रचारकों (मिशनरियों) को भेजना कितनी बड़ी मूर्खता है।" न्यूयार्क से प्रकाशित "क्रिटिक" ने उनको 'दैवी अधिकार प्राप्त वक्ता" कहा। सभी समसामयिक प्रसिद्ध पत्रों ने उनके सम्पूर्ण भाषणों को उद्धृत किया। अमेरिका के शीर्षस्थ समाचार-पत्रों— 'रदरफोर्ड अमेरिकन", "द बोस्टन इवनिंग ट्रांसक्रिप्ट" तथा "द शिकागो ट्रिब्यून" ने स्वामी विवेकानन्द के बारे में युक्तिपूर्ण एवं मार्मिक ढंग से लिखा।

धर्म-महासभा के विज्ञान-विभाग के अध्यक्ष माननीय मरबिन मेरी स्नेल ने लिखा—"एक भी धर्माचार ने धर्म-महासभा और अमरीकी जनता के

ऊपर इतनी गहरी छाप नहीं छोड़ी जितनी हिन्दुत्व ने छोड़ी तथा उनमें भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं हिन्दू-धर्म के विशिष्ट प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द थे जो वस्तुतः निःशंक रूप से सर्वाधिक लोकप्रिय और महासभा में सर्वाधिक प्रभावशाली थे।"

लेकिन यह सब विजय और गौरव मात्र व्यक्तिगत नहीं थे। सामान्यतः पूरब की संस्कृति और धर्म तथा खासकर भारतीय संस्कृति और धर्म की प्रतिष्ठा की उच्चता शीघ्र ही आकाश की ऊँचाई पर पहुँच गयी। भारत, एक गुलाम देश भारत, जिसे अंधविश्वासी, असभ्य, असंस्कृत, आदि कहा—समझा जाता था, तुरंत शाश्वत ज्ञान और विश्व-धर्म की पवित्र भूमि बन गया, उन अमरीकियों की नजर में भी बन गया जिन्हें कुछ कट्टरपंथी ईसाई मिशनरियों ने समझा दिया था और जो विश्वास कर चुके थे कि जब तक भारत के अज्ञानी जन-समूह के बीच बाईबिल नहीं भेजी जाती, तब तक उनकी रक्षा नहीं हो सकती। और इसके लिए उन्होंने सब तरह की झूठी कहानियाँ गढ़ ली थीं जो बच्चों की किताबों में स-चित्र वर्णित होती थीं। भारत की एक ईसाई मिशनरी ने अमरीकी बच्चों के मस्तिष्क के विकास के लिए "सॉंग्स फार द लिट्ल वन्स एट होम" नाम की पुस्तक में एक भजन-गान लिखा था—

देखो उस प्रतिमा-पूजक माँ को खड़ी/
जहाँ बहती पवित्र धारा/ अपने ही
मातृत्व भरे हाथों से / फेंकती है अपने
शिशु को बीच धारा में। सुनो!
मैं करुण-क्रन्दन सुनता हूँ। भयानक राक्षस
को प्राप्त है शिकार। या अंधा-खूनी निर्झर/
दूर बहा लेता लटके - बच्चे को।
अस्पष्ट - अस्पष्टतर [illegible]
सुनाई देता कानों में
लेकिन माँ का हृदय है [illegible]
वह रहती है अविचलित [illegible]
भेजो, अरे भेजो वही [illegible]
ताकि पहुँचे उसकी [illegible]
माँ के हृदय तक
उसके शिशु पा सकें [illegible]
और वह निभा सके माँ की [illegible]

यह एक प्रतीकात्मक कविता है जो [illegible] प्रचारकों के गंभीर अपराधों की [illegible] है और जिसने उस समय के अमरीकी [illegible] को इन्द्रजाल या सम्मोहन में [illegible] भारत के संबंध में अमरीकी समाज के [illegible] झूठे और बदनाम करने वाले आरोपों को [illegible] कर डाला गया था और स्वामी विवेकानन्द [illegible] अमरीकी मस्तिष्क से उन तमाम [illegible] को दूर करने के लिए वीरता पूर्वक लड़ना [illegible]

ऐसी किताबों में से एक "भारत और [illegible] निवासी" नाम की पुस्तक जो १८५८ [illegible] प्रथमतः प्रकाशित हुई थी, जो भारत संबंधी [illegible] झूठी कहानियों से पूर्ण थी, जिसमें अनेक [illegible] के उल्लेख के साथ एक मूर्ति पूजक माँ द्वारा [illegible] बच्चे को पवित्र गंगा नदी में फेंके जाते हुए [illegible] मनुष्य द्वारा अपनी जीवित पत्नी को जलाये [illegible] हुए, एक अंधविश्वासिनी माँ द्वारा अपने बच्चे [illegible] पक्षियों के भोजन हेतु फेंके जाते हुए [illegible] दिखाये गये थे।

डेट्रायट के एक ईसाई चर्च में भाषण [illegible] समय स्वामी जी से एक बार यही प्रश्न पूछा [illegible] था कि क्या हिन्दू माताएँ अपने शिशुओं [illegible]

महिलाओं के आगे फेंक देती है तो उन्होंने विनोद-पूर्ण शरारत से किंचित मुस्कुराते हुए कहा था—"हाँ, महोदया, मैं भी अपनी माँ के द्वारा फेंक दिया गया था। लेकिन आप देखती हैं कि मैं इतना मोटा शिशु था कि महिलाओं ने मुझे निगलने से इनकार कर दिया।" फिर तत्क्षण वे बहुत गंभीर हो गये, और मंच से बिल्कुल सनी हुई मुद्रा में होकर बादलों की तरह कड़कती आवाज में अपराजेय भाव से बोले—"लेकिन देवियो और सज्जनो, मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि हमलोगों ने कभी डायनों को नहीं जलाया। सारी सभा शांत हो गयी और सर्वत्र प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी।

अमरीका प्रयाण के पूर्व स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्द से कहा था—"यह धर्म महासभा इसके लिए (अपनी तरफ ऊँगली से संकेत करते हुए) होने जा रही है। मेरा मन ऐसा ही कहता है और वह दिन दूर नहीं कि तुम इसे प्रमाणित देखोगे।" आश्चर्यजनक रूप से यह बात अत्यन्त सत्य निकली।

यूँ तो धर्म-महासभा का उद्देश्य था—विश्व के सभी महान धर्मों के प्रतिनिधियों को एकत्र कर आपसी ज्ञान और समझदारी का आदान-प्रदान करना, मगर इसका आंतरिक उद्देश्य था—सम्पूर्ण विश्व पर ईसाइयत की श्रेष्ठता सिद्ध करना। किन्तु सब कुछ विपरीत ही हो गया।

धर्म-महासभा में अपने अंतिम भाषण के दौरान स्वामी विवेकानन्द अपने अत्यन्त संतोचित और प्रदीप्त मुद्रा में आ गये तथा घोषणा की—"न तो ईसाई को हिन्दू या बौद्ध होने की जरूरत है न बौद्ध या हिन्दू को ईसाई होने की जरूरत है बल्कि उत्साहपूर्वक एक दूसरे को पचा लेने की, मिला लेने की जरूरत है और साथ ही अपनी-अपनी निजता को सुरक्षित रखते हुए अपने विकास के नियमों के अनुरूप विकसित होने की जरूरत है।

यदि विश्व-धर्मसभा ने विश्व को कुछ दिखाया है तो यही कि पवित्रता, शुद्धता तथा परोपकार किसी चर्च की ऐकांतिक सम्पत्ति नहीं है तथा धर्म के हर मार्ग (सम्प्रदाय) ने आंतरिक प्रकाश से युक्त श्रेष्ठ नर-नारियों को उत्पन्न किया है। इस साक्ष्य के सन्दर्भ में, यदि कोई व्यक्ति मात्र अपने धर्म की उन्नति और दूसरे के धर्म के ध्वंस का सपना देखता है तो मैं उस पर तरस खाता हूँ, और उसे यह बता देना चाहता हूँ कि अब शीघ्र ही हर धर्म की पताका पर सभी विरोधों के बावजूद यही लिखा जाएगा—सहायता न कि संघर्ष। आपसी समन्वय न कि क्रुद्ध विरोध। समरसता और शांति, न कि संघर्ष।"

धर्म-महासभा की यही शिक्षा थी। इससे कट्टरतावाद की पीठ टूटी तो नहीं परन्तु उस पीठ पर पहली बार एक जोर का प्रहार अवश्य हुआ। इसने भारत को पश्चिम की नजर में ही नहीं उठाया बल्कि उसको उसकी अपनी नजर में भी उठाया जिसने एक राष्ट्रीय गौरव को और राष्ट्रीय पुनर्जागरण को जन्म दिया। पश्चिम ने पूर्व से शिक्षा लेनी शुरू की।

लेकिन, हमें अभी और लम्बी राह तय करनी है। आज कट्टरवादी विचारों को दूर करने की सख्त जरूरत है। समरसता, शांति, पूर्व एवं पश्चिम के आदर्शों का समन्वय एवं आदान-प्रदान तथा एक नये विश्व के निर्माण की जरूरत है।

आज, जब कि हमलोग शिकागो धर्म-महासभा की शताब्दी मना रहे हैं, अपनी पूरी सामर्थ्य भर हम इसे सफल बनाने का प्रयास करें।

शिकागो धर्ममहासभा का ऐतिहासिक महत्व

स्वामी विदेहात्मानन्द

यूरोप द्वारा भारत की खोज

विगत सहस्रों वर्षों से भारत वर्ष अपनी भौतिक एवं आध्यात्मिक सम्पदा के लिए सम्पूर्ण विश्व में विख्यात रहा है। इस विपुल सम्पदा की खोज में यूरोप से भारत आने का प्रयास करनेवालों में प्रथम ऐतिहासिक उदाहरण हमें सुप्रसिद्ध विजेता सिकन्दर से मिलता है। उसने अपने भौतिक साम्राज्य के विस्तार हेतु भारत की ओर कूच किया था, परन्तु अपने गुरु का यह अनुरोध भी उसने विस्मृत नहीं किया था कि वह भारत से कुछ ज्ञानी पुरुषों को भी साथ लेकर यूनान लौटे। यूरोप द्वारा भारतीय सम्पदा की यह खोज हजारों वर्षों तक चलती रही। अब से लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व यूरोप के राजपरिवार तथा व्यापारी भारत पहुँचकर यहाँ की समृद्धि में हिस्सा बँटाने को आकुल थे। परन्तु स्थल मार्ग पर अरबवासियों का एकाधिकार था और बिचौलियों के रूप में वे ही मालामाल हो रहे थे।

यूरोप के महान नाविक क्रिस्टोफर कोलम्बस का विचार था कि चूँकि पृथ्वी गोल है, अतः पश्चिम की ओर यात्रा करते हुए भी समुद्रमार्ग से भारत पहुँचा जा सकता है। स्पेन की महारानी की आर्थिक सहायता से उसे अपनी इस परिकल्पना को स्थापित करने का अवसर मिला और १४९२ ई० में उन्हीं के प्रतिनिधि रूप में अपने जहाजी बेड़े के साथ वह अपनी महान ऐतिहासिक यात्रा पर निकल पड़ा। आखिरकार पश्चिमी समुद्र के बीच उसे एक विशाल भूखण्ड मिला, जिसे भ्रमवश उसने भारत ही समझा। परन्तु बाद में पता चला कि वह एक नया ही महाद्वीप है और उसका नाम इण्डिया से बदलकर कोलम्बिया या अमेरिका रखा गया। अब भी वहाँ के आदि निवासियों को 'रेड इण्डियन' तथा वहाँ के द्वीप समूह को 'वेस्ट इण्डीज' कहा जाता है। इसके बाद छह वर्षों के भीतर ही पुर्तगाल के वास्को द-गामा ने भारत पहुँचने का वास्तविक जलमार्ग भी ढूँढ़ निकाला। इसके बाद क्रमशः अमेरिका तथा भारतीय प्रायद्वीप में अपने व्यापारिक तथा राजकीय उपनिवेश बनाकर यूरोपवासी इन देशों की भौतिक सभ्यता का दोहन करने लगे। परन्तु अब भी वे वास्तविक भारत, आध्यात्मिक भारत, जगद्गुरु भारत की खोज नहीं कर सके थे। भारत को इस अन्तरात्मा की वास्तविक खोज हुई इस घटना के चार शताब्दियों बाद।

चतुश्शती समारोह

क्रमशः यूरोपवासियों ने अमेरिका में बसते हुए एक महान राष्ट्र की नींव डाली। कोलम्बस द्वारा अमेरिका की खोज के चार सौ वर्ष पूर्ण होने के अवसर को बड़े समारोह पूर्वक मनाने की योजना बनी। इस उपलक्ष्य में १८९३ ई० में एक ऐसे मेले का आयोजन किया गया, जैसा कि विश्व के इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ था। इसके लिए शिकागो में मीशीगन झील के तट पर एक पूरी नयी बस्ती का निर्माण किया गया। इस मेले के माध्यम से पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी

के क्षेत्र में तब तक हुए उत्कर्ष की एक विराट् झाँकी प्रस्तुत की गयी थी। इसमें पाश्चात्य देशों के साथ ही साथ अल्प विकसित देशों की सभ्यता-संस्कृति के भी उत्कृष्ट नमूनों को स्थान मिला था। इसकी भव्यता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि छह महीनों तक चले इस मेले का विश्व के ७२ देशों के कुल २ करोड़ ७० लाख लोगों ने परिदर्शन किया था और एक अद्भुत संयोग यह कि इस पर खर्च भी २ करोड़ ७० लाख डालर का आया था।

भौतिक जगत् की इस प्रदर्शनी के साथ ही साथ मेले के आयोजकों ने सोचा कि इसमें मानव की वैचारिक जगत् की उपलब्धियों को भी स्थान मिलना चाहिए। एतदर्थ श्रीयुत चार्ल्स कैरल बोनी की अध्यक्षता में 'वर्ल्डस कांग्रेस एग्जिलरी ऑफ कोलम्बियन एक्सपोजीशन' नाम से एक कमेटी का गठन हुआ और उसके अन्तर्गत २० अलग-अलग समितियाँ भी बनीं। १५ मई से २८ अक्तूबर १८९३ ई० के दौरान चले इनके अधिवेशनों में सामाजिक प्रगति, पत्रकारिता, चिकित्सा विज्ञान, नशीले पदार्थों का निषेध, कानून, समाज सुधार, अर्थशास्त्र तथा धर्म आदि विषयों पर विशाल सभाएँ आयोजित हुईं। परन्तु इनमें हुए सैकड़ों व्याख्यान एवं चर्चाएँ आज विस्मृत हो चुकी हैं, इसका एकमात्र अपवाद है धर्म महासभा। ११ से २७ सितम्बर के बीच सम्पन्न हुई यह सभा आज भी महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक बनी हुई है इसका कारण यह है कि स्वामी विवेकानन्द के समान एक अभूतपूर्व मनीषी ने इसमें भाग लेकर इसे एक ऐतिहासिक आयाम प्रदान किया था। इस सभा में व्यक्त उनके विचार सुनकर पाश्चात्य जगत् हतप्रभ रह गया और उसे यह दृढ़ बोध हुआ कि धर्म के क्षेत्र में विश्व को भारत से काफी कुछ सीखना बाकी है।

महासभा का निहित उद्देश्य

ईसाई धर्म के प्रारम्भिक काल से ही मिशनरी-गण अपने धर्म को ही विश्व का एकमात्र सच्चा धर्म मानकर अन्य धर्मों को तुच्छता की दृष्टि से देखते थे। अमेरिका के मिशनरियों ने भारत के धर्म तथा समाज के विषय में अनेक मनगढ़न्त बातों को सचित्र पुस्तकों के माध्यम से प्रकाशित किया था और उनका प्रचार करके वे वहाँ के लोगों के मन में भारत के जंगली, पिछड़े तथा वीभत्स प्रथाओं वाले हिन्दुओं के विषय में करुणा का संचार किया करते थे। असभ्य भारतवासियों का धर्मान्तरण कर उनकी आत्मा का उद्धार करने हेतु वे दान के रूप में करोड़ों डालर भी एकत्र करते थे, जिसका अधिकांश भाग उनके ऐशो-आरामपूर्ण जीवन बिताने पर व्यय होता था। ऐसे ईसाई धर्माचार्यों ने विश्व के अन्य धर्मों को आमंत्रित कर उनकी तुच्छता तथा अपनी उत्कृष्टता प्रमाणित करने हेतु ही इस महा-सभा के आयोजन में सहमति प्रदान की थी। जब कट्टर ईसाइयों ने यह आपत्ति उठायी कि अन्य धर्मों को भी ईसाई धर्म के ही समान आसन देना हमारे धर्म का अपमान होगा, तो इसका उत्तर देते हुए सभा की कार्यसमिति के अध्यक्ष रेवरेण्ड जान हेनरी बैरोज ने कहा था, "हमारा विश्वास है कि ईसाई धर्म अन्य सभी धर्मों का स्थान ले लेगा, क्योंकि बाकी धर्मों में जो सत्य हैं, वे सभी तो ईसाई धर्म में हैं ही, इसमें और भी अधिक सत्य हैं, क्योंकि एकमात्र यही धर्म एक अद्वितीय मुक्ति-दाता ईश्वर के विषय में बताता है। माना कि प्रकाश के साथ अन्धकार की मित्रता संभव नहीं, परन्तु क्षीण आलोक के साथ तो उसका साहचर्य अवश्य ही हो सकता है।" और फिर कैंटेबेरी के आर्यबिशप ने तो महासभा में भाग लेने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए लिख भेजा था, "मैं दूरी अथवा किसी अन्य कठिनाई के चलते असुविधा का

अनुभव नहीं कर रहा हूँ, बल्कि इसका कारण यह है कि ईसाई धर्म ही एकमात्र धर्म है और मेरी समझ में नहीं आता कि अन्य आमंत्रित सदस्यों को समानता का दर्जा दिए बिना तथा उनके मतों व दावों की तुल्यता माने बिना, किस प्रकार ईसाई धर्म इस सभा के एक अंग के रूप में गृहीत होगा।"

इन सब विरोधों तथा आपत्तियों के बावजूद धर्म महासभा का आयोजन हुआ और वह इस उद्देश्य के साथ कि इसमें अन्य धर्मों को पराजित तथा अपमानित कर ईसाई धर्म के विश्व विजय की घोषणा की जायगी। परन्तु इन सभा की सफलता के लिए हर तरह से योगदान करनेवाली अमेरिकी जनता ऐसे किसी दुराग्रह से मुक्त थी और उनका खुला एवं उदार दृष्टिकोण इस महासभा की सफलता का कारण सिद्ध हुआ। उपरोक्त पृष्ठभूमि के साथ देखने पर ही हल स्वामी विवेकानन्द द्वारा विश्वमंच पर सम्पन्न महान कार्य का यथार्थ आकलन कर सकेंगे।

महासभा : एक विहंगावलोकन

भले ही यह महान सम्मेलन अमेरिका में आयोजित हुआ हो, परन्तु विश्व के प्रत्येक धर्म का उद्गम एशिया से ही हुआ है। इस सभा में सम्मिलित होनेवाले दस सम्प्रदायों में से यहूदी, पारसी, कैथलिक, प्रोटेस्टेंट तथा ग्रीक चर्च—इन पांच का उद्भव पश्चिमी एशिया से हुआ और हिन्दू, बौद्ध, जैन, शिन्तो तथा कन्फ्यूशियन—ये पांच दक्षिण पूर्व एशिया का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। यह भी एक बड़ी विचित्र बात थी कि विश्व का सबसे प्राचीन तथा सब धर्मों का मूल वैदिक या हिन्दू धर्म अपना कोई भी औपचारिक प्रतिनिधि वहाँ नहीं भेज सका था। भारत के कुछ राजाओं और मद्रास के कुछ युवकों के अनुरोध तथा सहयोग से स्वामी विवेकानन्द स्वाधीन रूप से ही महासभा में भाग लेने आ पहुँचे थे, परन्तु उनके पास न तो सभा में सम्मिलित होने का निमंत्रण था और न ही कोई परिचय पत्र। इतिहास का यह क्या ही रोचक विरोधाभास है कि जो व्यक्ति इस महासभा का नायक बनने वाला था और जिसके कारण यह सभा स्मरणीय बनने वाली थी, उसे असीम कठिनाइयाँ झेलने के बाद ही इसमें भाग लेने का अवसर मिला।

अन्ततः ११ सितम्बर, सोमवार का ऐतिहासिक दिवस आ पहुँचा। उसी दिन शिकागो आर्ट इन्स्टीट्यूट के विशाल 'कोलम्बस सभागार' में धर्ममहासभा का अधिवेशन आरम्भ हुआ। प्रातःकाल ठीक दस बजे इसमें भाग लेनेवाले विश्व के दस महान धर्ममतों के सम्मान में दस बार घण्टा ध्वनि हुई। हाल की गैलरी में चार हजार तथा द्वार के पास खड़े और भी अनेक श्रोता उत्सुकतापूर्वक सभा की कार्यवाही प्रारम्भ होने की बाट जोह रहे थे। उस समय यह जनसमुद्र इतना स्पन्दनहीन तथा शान्त था कि एक प्रत्यक्षदर्शी के शब्दों में, "जब एक छोटी सी चिड़िया खुली खिड़की से प्रविष्ट होकर मंच के ऊपर से उड़कर चली गयी तो उसके पंखों की आवाज तक साफ-साफ सुनाई दे रही थी।" सभागार में मंच की लम्बाई लगभग १०० फीट तथा चौड़ाई १५ फीट थी। मंच पर पीछे दीवाल से लगकर दो यूनानी दार्शनिकों की विशाल मूर्तियाँ लगी हुई थीं और उसके भी दाहिनी ओर देवी सरस्वती के सदृश एक मूर्ति हाथ उठाए दण्डायमान थी। मंच पर बीचोबीच अमेरिका के प्रधान ईसाई धर्माचार्य के लिए एक भव्य सिंहासन और प्रतिनिधियों के लिए उसके दोनों ओर तीन कतारों में लगभग साठ कुर्सियाँ लगी हुई थीं। ठीक दस बजे घण्टाध्वनि के पश्चात् महासभा के कुछ प्रमुख अधिकारी तथा सभी धर्मों के प्रतिनिधि पंक्तिबद्ध होकर सभागार के मध्यवर्ती पथ से होकर मंच की ओर

बड़े और अपनी-अपनी कुर्सियों पर आसीन हो गये। स्वामी विवेकानन्द की कुर्सी की संख्या इकतीस थी।

इसके आगे की कहानी स्वामीजी के ही शब्दों में इस प्रकार है—"महासभा के उद्घाटन वाले दिन सुबह हम लोग 'आर्ट पैलेस' नामक भवन में एकत्र हुए।... सभी राष्ट्रों के लोग वहाँ आए हुए थे। भारतवर्ष से ब्रह्मसमाज के प्रतिनिधि प्रताप चन्द्र मजुमदार थे, बम्बई से नगरकर आए थे, जैन धर्म के प्रतिनिधि वीरचन्द गांधी थे और श्रीमती बेसेन्ट तथा चक्रवर्ती थियासफी का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।...बड़े शानदार जुलूस के बाद हम लोग मंच पर बिठाए गए। कल्पना करो, नीचे एक हाल और ऊपर एक बहुत बड़ी गैलरी, जिनमें इस देश के चुने हुए छह-सात हजार सुसंस्कृत नर-नारी खचाखच भरे हैं और मंच पर संसार के सभी राष्ट्रों के बड़े बड़े विद्वान एकत्र हैं। और मुझे, जिसने अब तक कभी सार्वजनिक सभाओं में भाषण नहीं दिया, इस विराट जन-समुदाय के सामने बोलना होगा!

"बड़े समारोहपूर्वक संगीत तथा भाषणों के साथ सभा का उद्घाटन हुआ। तदुपरांत एक-एक कर सभा में आए प्रतिनिधियों का परिचय दिया गया और वे सामने आ-आकर अपने व्याख्यान देने लगे। निःसंदेह मेरा हृदय धड़क रहा था और जिह्वा प्रायः सूख गई थी। मैं इतना घबड़ाया हुआ था कि सवेरे बोलने की हिम्मत ही नहीं हुई। मजूमदार की वक्तृता सुन्दर रही। चक्रवर्ती की तो उससे भी सुन्दर रही। खूब तालियाँ बजीं। ये लोग अपने भाषण तैयार करके लाए थे। मैं अबोध था और बिना किसी तैयारी के आ पहुँचा था।

प्रातःकालीन सत्र में कई बार बुलाये जाने पर भी स्वामीजी टालते गये फिर अपराह्न में चार अन्य प्रतिनिधियों के लिखित भाषण हो जाने के बाद उन्हें पुनः बुलाया गया। स्वामीजी ने आगे लिखा है, "देवी सरस्वती को प्रणाम कर मैं आगे बढ़ा और डॉ० बैरोज ने मेरा परिचय दिया। मेरे गैरिक वस्त्रों के कारण श्रोताओं का ध्यान किंचित आकृष्ट हुआ था। अमेरिकावासियों को धन्यवाद तथा और भी दो-एक बातें कहकर मैंने एक छोटा-सा व्याख्यान दिया। जब मैंने 'अमेरिका वासी बहनो तथा भाइयो' कहते हुए सभा को सम्बोधित किया, तो इसके साथ ही दो मिनट तक ऐसी घोर करतल-ध्वनि हुई कि कानों में अंगुली देते ही बनी। तब मैंने बोलना आरम्भ किया। और जब मैं अपना वक्तव्य समाप्त करके बैठा, तो भावावेग से मानो मैं अवश हो गया था। अगले दिन सभी अखबारों में छपा कि उस दिन मेरा भाषण ही सर्वाधिक मर्मस्पर्शी बन पड़ा था। अतः पूरा अमेरिका मुझे जान गया। महान टीकाकार श्रीधर ने सत्य ही लिखा है मूकं करोति वाचालम्—जिन प्रभु की कृपा गूंगे को भी धारा-प्रवाह वक्ता बना देती है, उनकी जय हो! उसी दिन से मैं विख्यात् हो गया और जिस दिन मैंने हिन्दू धर्म पर अपनी वक्तृता पढ़ी, उस दिन तो हाल में इतनी भीड़ हुई, जितनी पहले कभी नहीं हुई थी।"

महासभा का अधिवेशन ११ से २७ सितम्बर तक चला था। इसके मुख्य सत्रों में स्वामीजी द्वारा प्रदत्त छह व्याख्यानों के विवरण उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त इसकी विज्ञान शाखा में भी उनके लगभग आठ भाषण हुए थे, जिनकी पूरी जानकारी प्राप्त नहीं है। स्वामीजी ने इन व्याख्यानों के द्वारा सभी धर्मों की सत्यता एवं उनके सह-अस्तित्व पर जोर दिया था और साथ ही भारतीय समाज तथा हिन्दू धर्म का यथार्थ चित्र निरूपित किया था। परन्तु विश्वविजय का स्वप्न देखने-

वाले ईसाई मिशनरी चुप नहीं बैठ सके। सभा के पांचवें दिन १५ सितम्बर को अपराह्न में विभिन्न धर्मों के मतावलम्बी जब अपने-अपने धर्म की महत्ता स्थापित करने के प्रयास में लगे तो स्वामीजी ने अन्त में कूपमण्डूक का दृष्टांत बताकर सबको शान्त कर दिया। फिर १९ सितम्बर को जब स्वामीजी ने 'हिन्दू धर्म' पर अपना लिखित भाषण पढ़ा तो उस दिन ईसाई मिशनरियों का दबा हुआ आक्रोश उबल पड़ा। रेवरेण्ड जोसेफ कुक ने उठकर हिन्दुओं की तीव्र आलोचना की और बदले में उन्हें भी काफी-कुछ झेलना पड़ा। उन्हें प्रत्युत्तर देते हुए स्वामीजी ने तीक्ष्ण स्वर में कहा, "हम पूर्वी देशों के लोग यहां दिन-पर-दिन बैठे ऐसी शेखी भरी बातें सुनते रहे हैं कि ईसाई राष्ट्र ही सर्वाधिक ऐश्वर्यशाली हैं और हम लोगों को भी ईसाई हो जाना चाहिए। चारों ओर नजर दौड़ाने पर हमारी दृष्टि दुनिया के सर्वाधिक समृद्ध राष्ट्र इंगलैण्ड की ओर जाती है, जिसके पांव २५ करोड़ एशियावासियों की गरदन पर हैं।...अपने ही मानव भाइयों का गला काटकर ईसाई धर्म ऐश्वर्य अर्जित करता है। हिन्दू ऐसी कीमत पर समृद्ध होना नहीं चाहेगा।" इसके बाद से सम्भवतः ईसाई मिशनरियों को सभा में अपने संकीर्ण विचार थोपने का साहस नहीं हुआ।

सभा के अन्तिम सत्र में २७ सितम्बर को अपने विदाई भाषण में मानो विश्व को अपने मूल सन्देश से अवगत कराते हुए स्वामीजी ने कहा—

"ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं बनाना है, और न ही हिन्दू या बौद्ध को ईसाई; परन्तु प्रत्येक को चाहिए कि वह अन्य धर्मों के सारभाग को आत्मसात करके पुष्ट हो और अपने वैशिष्ट्य को बनाए रखकर अपनी ही प्रकृति के अनुसार विकसित हो। यदि इस महासभा ने दुनिया के समक्ष कुछ प्रदर्शित किया है तो वह यह है—इसने यह सिद्ध कर दिया है कि साधुता, पवित्रता तथा दयाशीलता किसी सम्प्रदाय- विशेष की बपौती नहीं है और प्रत्येक धर्म में अति उन्नत चरित्र के नर-नारियों का जन्म हुआ है। अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि केवल उसी का धर्म टिका रहेगा और अन्य सारे धर्म लुप्त हो जाएँगे, तो वह वस्तुतः दया का पात्र है; मैं उसके लिए हृदय से दुखी हूँ और उसे स्पष्ट रूप से बताए देता हूँ कि समस्त प्रतिरोधों के बावजूद शीघ्र ही प्रत्येक धर्म की पताका पर लिखा होगा—'संघर्ष नहीं, सहायता, विनाश नहीं, ग्रहण, मतभेद एवं कलह नहीं, समन्वय और शान्ति'।"

यह सभी धर्मों की सत्यता, समानता एवं स्वीकृति ही भारत का चिरन्तन सन्देश है और शिकागो धर्ममहासभा के दौरान स्वामीजी के अधरों से यह जितने उत्कृष्ट रूप में व्यक्त हुआ, वैसा अन्यत्र कभी नहीं हुआ। विश्व के लिए अब भी इसे समझना तथा कार्यरूप में परिणत करना बाकी है।

युग पुरुष स्वामी विवेकानन्द

महाकवि आरसी प्रसाद सिंह
राजेन्द्र नगर, पटना।

अमरीका के नगर शिकागो में उस दिन था
सार्वभौम सद्धर्म संघ का महा-महोत्सव;
सभागार में सभी शिखर धर्मों के नेता,
वक्ता और प्रवक्ता करते वाणी-विप्लव।

वहीं शान्त संन्यासी कोई युवा अकेला
बैठा था, जो दूर देश भारत से आकर,
भाषण का अवसर पाते ही रंगमंच पर
लगा दिया अद्भुत नवीन भावों का मेला।

"अमरीका के भाई-बहनो"—यों सम्बोधन
किया कि श्रोता झूम उठे मस्ती में सारे।
फिर तो वाणी की धारा यों हुई प्रवाहित
डूब गये, बह गये गगन के चाँद-सितारे।

"साधु,साधु" का हर्षनाद समवेत दर्शकों—
श्रोताओं के मुख से निःसृत हो गहराया।
परिव्राजक वक्ता का वचनामृत पीने फिर
सभा-भवन में अकस्मात् सन्नाटा छाया।

शंखघोष था विश्वमंच पर नव भारत के
महाजागरण का नवीन युग में वह पहला।
अमरीका में जो गूँजा, तो अखिल विश्व के
पुच्छ-विषाणों, खुर-नख-दन्तों का दिल दहला।

धर्माध्यक्ष जगत के सारे हुए चमत्कृत,
"अरे, कौन वनराज राज-गृह में घुस आया ?"
पर, अमरीका के नर-नारी, जन-समाज ने
हाथों हाथ उछाला, उसको गले लगाया।

फिर तो ऐसी धूम मचायी संन्यासी ने,
फहराया वेदान्त धर्म का ऐसा झंडा,
सारा विश्व सिमट कर आया उसके नीचे,
भौंचक-सा रह गया देखता पंडित-पंडा।

एक ओर तो उसने भारत के अतीत की
गरिमा, महिमा और प्रतिष्ठा याद दिला दी।
और दूसरी ओर जगत में हिन्द देश की
खोयी साख जगाकर, फिर से धाक जमा दी।

वन्दनीय वह कौन महा मानव है जिसका—
नामोच्चारण ही कलि-कल्मष धो सकता है।
रामकृष्ण के शिष्य विवेकानन्द सिवा भी
महाभाग क्या भला दूसरा हो सकता है ?

परमहंस श्रीरामकृष्ण के जीवन-तप का
सर्वोत्तम फल फला विवेकानन्द-रूप में।
गुरु-दिनेश की आत्मा से परिपालित, लालित
शिष्य विवेकानन्द स्वयं ढल गया धूप में।

फिर तो गुरुवर और शिष्य की योग-शक्ति ने
आंधी-सा सारे भारत-भू को झकझोड़ा।
अमरनाथ,कश्मीर, कुमारी कन्या से ले—
अलमोड़ा, कलकत्ता, राजस्थान न छोड़ा।

गुरु गृहस्थ, चेला संन्यासी, किसने देखा
चमत्कार सम्बन्ध अनोखा ऐसा जग में ?

एक हृदय, दो देह, व्यक्ति दो, ज्ञान अकेला
अभय, अजय, निर्द्वन्द्व चला जीवन के मग में।

अलग नहीं हो सकता, ऐसा पुष्प-गन्ध-सा
रामकृष्ण के साथ विवेकानन्द जुड़ा है।
और विवेकानन्द मुड़ा जिस ओर, समय का
जल-प्रवाह भी उसी ओर सावेग मुड़ा है।

गुरु का देह-पात होते ही शिष्य मण्डली
चले विवेकानन्द साथ में लेकर सारी।
गाँठ बाँधकर गुरु का आशीर्वाद हृदय में—
'दीन-दुखी की सेवा ही है प्रभु को प्यारी।

तब से एक बीज छोटा-सा बढ़ते बढ़ते
आज महा वटवृक्ष रूप में फैल रहा है।
जिसकी शीतल, शांत, स्निग्ध छाया में आकर
पीड़ित मानव ने भीषण भवताप सहा है।

एक नहीं, दो नहीं; समर्पित गुरुभाई हैं
पन्द्रह साथी और विवेकानन्द सरीखे।
जिनसे कोई ज्ञान, भक्ति, निष्काम कर्म की
युक्ति, मुक्ति का मंत्र, योग की विद्या सीखे।

संन्यासी का वेश-मात्र ही नहीं गेरुआ
वस्त्रों का परिधान न केवल अंग लगा है।
मन में भी वैराग्य जगा है, सारा जीवन
राम कृष्ण-सा श्याम रंग में रंगा पगा है।

फिर जो ज्वालामुखी ब्रह्मवाणी की भड़की,
आग उगलती रही चेतना को अग-जग में।
पृथ्वी भी छोटी पड़ती लम्बी बाँहों में
नभ मण्डल सिमटा, सिकुड़ा है वामन-पग में।

बड़ी विभावों को प्रचण्ड गति से प्लावित कर
ऊर्जा, शील, शौर्य की ऐसी वर्षा छायी,
लगता था, मानव का रूप ग्रहण कर कोई
पराशक्ति ही स्वयं उतर भूतल पर आयी।

भगिनी निवेदिता-सी देवी करुणा-प्रतिमा
भारत-सेवा में आयी पश्चिम जन-मन से।
सुख, विलास, वैभव का जीवन त्याग पधारे
कितने तरुणी-तरुण न जाने, आकर्षण से।

जिस चुम्बक से खिंचकर आते चले गये हैं
देश-विदेशों से देवों के दूत निरन्तर,
वह था स्वामी एक विवेकानन्द निराला
संन्यासी नव भारत का तूफान, बवण्डर।

देशभक्ति के सात्विक भावों से बहलाया
भरतभूमि के भावुक मन की तरुणाई को।
क्रान्ति-बीज बो दिये दासता की क्यारी में
और हवा दी युव-शोलों की अंगड़ाई को

"ओ भारत के युवको"—स्वामी ने ललकारा
"फूट बोल खेलो, फौलादी जिस्म बनाओ।
गीता का सन्देश तभी तुम समझ सकोगे
क्षत्रिय की पीड़ा झेलो, अर्जुन बन जाओ!"

धर्मयुद्ध के दिग्विजयी योद्धा ने अतिशय
विपुल कर्म कर अल्प आयु में देह छोड़ दी।
पराधीनता की बेड़ी-हथकड़ी हिलाकर
भारतीय आत्मा की जड़ता-नींद तोड़ दी।

शत-शत बार नमन् प्रभात की प्रथम किरण को
स्वर्णद्वार मंगल प्रकाश का जिसने खोला
महाप्राण युग-पुरुष, विवेकानन्द-सूर्य, जो
अन्धकार के राज्य-तंत्र पर हमला बोला।'

शिकागो धर्म-महासभा और स्वामी विवेकानन्द

श्री राजमोहन तिवारी
गोंदिया, महाराष्ट्र

शिकागो में आयोजित धर्म महासभा विश्व के इतिहास की एक विलक्षण घटना है। अमेरिका राष्ट्र की स्थापना के चार सौ वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष में विशाल औद्योगिक मेले का आयोजन (World's Columbinn Exposition) के नाम से शिकागो में किया गया जहाँ पाश्चात्य सभ्यता अपने वैभव एवम् समृद्धि में झूम रही थी। शिकागो अपने अन्न भंडार, पशुधन तथा रेल के जाल से अमेरिका का सघनतम आबादी का क्षेत्र था जहाँ यूरोप के विभिन्न भागों से आये आव्रजक निवास करते थे। इसी औद्योगिक मेले का एक भाग धर्म महासभा थी जिसे आर्ट इन्स्टीट्यूट के कोलम्बस हॉल में आयोजित किया गया था।

विश्व के इतिहास में इससे पूर्व ऐसा समागम कभी नहीं हुआ था जिसमें विश्व के प्रचलित सभी धर्म तथा सम्प्रदायों के मानने वाले निर्भीक होकर अपने धर्म की आस्थाओं का बखान कर सकें वह भी एक ऐसे समय में जब धार्मिक द्वेष व असहिष्णुता की छाया विश्व पर छायी हो। अनेकों का आज भी विश्वास है कि इसे किसी अलौकिक शक्ति का ही चमत्कार समझना चाहिये। स्वामी विवेकानन्द ने भी अपनी अमेरिका यात्रा के निश्चय के बाद अपने गुरु भाई स्वामी तुरीयानन्द से कहा था, "इस धर्म महासभा का आयोजन इसके (अपने को इंगित करते हुए लिये हो रहा है। मेरा मन मुझसे यही कहता है। कुछ ही दिनों बाद इसका प्रमाण तुम्हें प्राप्त होगा ?"

विश्व धर्मों में एकत्व लाने का प्रयास एक पुराना स्वप्न है। जिन्होंने ऐसे प्रयास किये उनके मनों में सम्भवतः यह विचार रहा है कि ऐसा करने से विश्व में एकता और भाईचारा स्थापित होगा और "वसुधैव कुटुम्बकं" का भाव जाग्रत होगा। धर्म महासभा के जो छः उद्देश्य प्रचारित किये गये थे वे इस तथ्य को इंगित करते हैं (1) विश्व के महान ऐतिहासिक धर्मों के प्रतिनिधियों को एक मंच पर एकत्रित करना, (2) इनमें से प्रत्येक धर्म ने जिस प्रकार सत्य का निरूपन किया है व सिखाया है उससे सर्वसाधारण को अवगत करना, (3) सभी धर्मों के तथा क्रिश्चियन धर्म को विभिन्न शाखाओं उपशाखाओं के विशिष्ट वक्ताओं को अपने-अपने धर्मों की विशिष्टताओं को प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करना, (4) धर्मों के अनुकरणीय तथ्यों की शोध करना, (5) युग के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर जैसे समृद्धि, गरीबी, श्रम, शिक्षा, सहिष्णुता आदि पर धर्म के प्रभाव की शोध करना, (6) विश्व शान्ति हेतु राष्ट्रों के बीच अधिकाधिक सहकार हेतु प्रयास करना।

देखने से यह प्रतीत होता है कि धर्म महासभा के आयोजकों के विचार अत्यन्त उदार थे परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके मन में केवल विश्व भ्रातृत्व की ही भावना कार्य कर रही थी। धर्म महासभा के माध्यम से ईसाई धर्म अन्य सभी धर्मों से कितना श्रेष्ठ और उदार है, यह प्रतिष्ठापित करने का भाव भी आयोजकों के अन्तर्मन में था।

धर्म महासभा का आयोजन अत्यन्त ही व्यवस्थित

रूप से हुआ था तथा विश्व के सभी देशों के प्रमुख समाचार पत्रों में इसे प्रचारित किया गया था। इसलिए अनेक धर्मों ने अपने प्रतिनिधियों को सूची सभा के संयोजकों को समय से पूर्व भेज दी थी। भारत से पी. सी. मजूमदार (कलकत्ता) तथा वी. बी. नागरकर बम्बई ब्रह्मो समाज के प्रतिनिधि थे। कलकत्ता की महाबोधि सोसाइटी के जनरल सेक्रेटरी धर्मपाल बौद्ध धर्म का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। थियासॉफीकल सोसायटी ने श्रीमती एनी बिसेंट तथा श्री चक्रवर्ती को प्रतिनिधि बनाकर भेजा था। श्री वीरचन्द गाँधी, जैन मुनि आत्माराम के साथ जैन धर्म के प्रतिनिधि थे। इसे विडम्बना ही कहेंगे कि जिस हिन्दू धर्म को स्वामीजी ने अपने भाषण में "धर्मों की जननी" के नाम से सम्बोधित किया था उसका कोई भी प्रतिनिधि भारत से अधिकृत रूप से धर्म महासभा में नहीं भेजा गया। इसका कारण ढूँढने दूर नहीं जाना पड़ेगा। हिन्दू धर्म इतने वादों, पन्थों और शाखाओं में विभाजित रहा है कि "एकम विप्रा बहुधा वदन्ति" के मूल से दूर जा पड़ा था। मत-मतान्तर के झगड़ों में कौन किसको प्रतिनिधि बनाये और क्यों? पांडित्य जब धर्म का प्रतीक बन जाता है तो धर्म हृदय से हटकर मुख में आकर वाग्विलास का साधन बनकर रह जाता है। सर्व ज्ञाता वह जो धर्म सम्बन्धी वाद-विवाद में दूसरों का मुह बन्द कर दें। जो ब्रह्म के सगुण या निर्गुण होने के शास्त्रों का प्रमाण प्रस्तुत करे या मन्दिरों में सभी मनुष्यों के प्रवेश अप्रवेश के औचित्य पर आधिकारिक मत दे।

अपनी भारत परिक्रमा के क्रम में स्वामीजी ने भारतीयों की दुर्दशा देखकर एक योजना बनायी। उन्होंने इस सम्बन्ध में एक पत्र में लिखा—हम इतने सारे संन्यासी लोगों को ब्रह्मविद्या (Metaphysics) सिखलाते घूमते हैं, यह निरा पागलपन है। क्या हमारे गुरुदेव नहीं कहा करते थे कि "धर्म भूखे पेट के लिए नहीं है"? ये लोग पशुवत जीवन व्यतीत कर रहे हैं जिसका कारण केवल अज्ञानता है। हमने सदियों से उनका शोषण किया है और उन्हें पैरों तले रौंदा है।

स्वामीजी ने निश्चय किया कि वे धर्म महासभा में भाग लेने अमेरिका जायेंगे। यदि देश के धनाढ्य वर्ग और राजा महाराजा इस पीड़ित वर्ग के लिए कुछ नहीं करते तो वे पश्चिम से मदद लेंगे। बदले में वे पश्चिम को भारत का आध्यात्मिक ज्ञान देंगे। इसी समय एक रात जब वे अर्ध निद्रा की अवस्था में थे उन्होंने श्री रामकृष्ण को देखा जो सागर की ऊत्ताल तरंगों पर चलते हुए पश्चिम की ओर जा रहे थे और उन्हें पीछे आने हेतु इशारा कर रहे थे। वे जागे और उनकी सारी देह एक चिरन्तन शांति व आनन्द से पुलकित हो गयी। किन्तु माँ शारदा का आशीर्वाद? जब वे परिव्राजक जीवन हेतु प्रस्थान कर रहे थे तो उन्होंने पहले श्री माँ का आशीर्वाद और आज्ञा ली इस समय भी श्री माँ का आशीर्वाद उनके लिए परम आवश्यक था। उन्होंने पत्र लिखकर श्री माँ से आज्ञा मांगी। कुछ ही समय बाद श्री माँ का आशीर्वाद उन्हें प्राप्त हुआ और धर्म महासभा में भाग लेने हेतु उनका मार्ग प्रशस्त हो गया।

31 मई, 1893 को स्वामीजी ने भारत से पश्चिम की ओर प्रस्थान किया। उन्हें विदाई देने हेतु मुन्शी जगमोहन लाल व मद्रास के श्री आलासिंगा पेरुमल जहाज की सीढ़ियों तक गये। स्वामी जी कोलम्बो, पेनांग, सिंगापुर, हांगकांग, केन्टन, नागासाकी, ओसाका, टोकियो, याकोहामा होते हुए जुलाई माह में व्वंकोवर में उतरे। वहां से वे रेल से शिकागो पहुँचे। दूसरे। ही दिन वे विश्व मेला देखने निकले। अमेरिका की भौतिक समृद्धि तथा

औद्योगिक क्रांति स्वरूप प्राप्त की गयी सुख सुविधा देखकर वे स्तंभित हो गये। शिकागो में ही उन्हें ज्ञात हुआ कि धर्म महासभा अगस्त में नहीं बल्कि सितम्बर के प्रथम सप्ताह में होगी। साथ ही उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि उसमें भाग लेने वालों की सूची को अन्तिम रूप दिया जा चुका है और किसी नवीन प्रवेश की अब कोई सम्भावना नहीं है। धर्म महसभा में उन्हें ही प्रवेश सुलभ था जो किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष के अधिकृत प्रतिनिधि हों व अपने साथ इस प्रकार का अधिकार पत्र साथ लाये हों। एक अन्य चिंता स्वामीजी को परेशान कर रही थी। शिकागो बहुत ही मंहगा शहर था और उनकी सीमित धनराशी दिन प्रतिदिन घट रही थी। किसी शुभचिंतक द्वारा उन्हें परामर्श मिला कि वे शिकागो की अपेक्षा बोस्टन शहर में रहकर इस व्यय को न्यून कर सकते हैं अतएव स्वामीजी बोस्टन के लिए रवाना हुए। यह दैवी संयोग ही था कि एक धनी अमेरिकन महिला मिस सैनबार्न उसी डिब्बे में यात्रा कर रही थीं। परिचय होने पर उन्होंने स्वामीजी से आग्रह किया कि बोस्टन में वे उनके घर ठहरें। इस प्रकार स्वामीजी को प्रतिदिन एक पौंड की बचत हुई, साथ ही मिस सेनबार्न भी प्रसन्न थीं क्योंकि वे अपनी सहेलियों और मित्रों को भारत से आये अजीव जीव को दिखाकर बहुत खुश होतीं। यहीं पर स्वामीजी का परिचय हार्वर्ड विश्वविद्यालय में ग्रीक के प्राध्यापक जे. एच. राइट महाशय से हुआ, जिनसे अनेक विषयों पर लम्बी वार्ताएँ हुई। प्रो. राइट उनसे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने स्वामीजी से धर्म महासभा में भाग लेने का आग्रह किया। जब स्वामीजी ने उन्हें बतलाया कि वे अपने साथ कोई अधिकार पत्र नहीं लाये हैं तो प्रो. राइट महाशय ने कहा था "To ask you swami, for your Credentials is like asklng the sun to state its right to shine." प्रो. राइट का धर्म सहसभा के अनेक पदाधिकारियों से निकट का परिचय था, उन्होंने ही अपने प्रयास से स्वामीजी को हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकृति दिलायी।

11 सितम्बर 1893 की सुबह कोलम्बस हॉल के मंच पर विश्व के अनेक धर्मों के प्रतिनिधि बैठे जो विश्व की 120 करोड़ जनता का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। नीचे हॉल और एक विशाल गैलरी थी जिसमें अमेरिका के अतिरिक्त देश विदेश से एकत्रित हुए सात हजार से अधिक प्रबुद्ध श्रोता थे। भाषणदाताओं में ईसाई धर्म के अतिरिक्त हिन्दू, जैन, बुद्ध, यहूदी इस्लाम, पारसी व चीन के शिन्तो धर्म व कन्फ्यूसियस धर्म के प्रतिनिधि थे। प्रतिनिधियों का एक एक कर परिचय दिया गया तथा उन्होंने मंच के सामने आकर संक्षिप्त भाषण दिया। सुबह के सत्र में स्वामीजी से एक-दो बार भाषण हेतु आग्रह किया गया परन्तु उन्होंने उसे टाल दिया। दोपहर के सत्र में विशेष आग्रह पर वे उठकर सामने आये उन्हीं के शब्दों में 'मैं देवी सरस्वती का स्मरण कर आगे बढ़ा। बेरोज महोदय ने मेरा परिचय करा दिया। मेरे गेरुए वस्त्र से श्रोताओं का चित्त थोड़ा बहुत आकृष्ट हुआ था..... जिस समय मैंने उपस्थित जनता को अमेरिका निवासी मेरी बहनो और भाइयो कहकर सम्बोधित किया उस समय दो मिनट तक लगातार ऐसी करतल ध्वनि हुई कि मानों कान ही बधिर होने लगे। उसके बाद मैंने भाषण प्रारम्भ किया। जब मेरा भाषण समाप्त हुआ उस समय हृदय के आवेश से सम्पूर्ण शांत हो मैं बैठ गया। दूसरे दिन सभी समाचार पत्रों में मोटी-मोटी लाईनों में यही वृतान्त आया कि मेरा भाषण सभी को बहुत अच्छा लगा। बस उसके बाद अमेरिका मुझे जान गया.....उस दिन से मैं एक विख्यात व्यक्ति बन गया। और जिस दिन हिन्दू धर्म के

सम्बन्ध में मैंने अपना भाषण दिया उस दिन तो हॉल में इतनी भीड़ हुई थी कि वैसी अन्य किसी दिन नहीं हुई। थियोसॉफिस्ट सम्प्रदाय की नेत्री श्रीमती एनी बेसेन्ट ने स्वामीजी की हाल में उपस्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है "महिमामय मूर्ति, गैरिक वस्त्र से भूषित शिकागो शहर के (धूममलिन) धूसर वक्ष पर भारतीय सूर्य की तरह दिप्तीमान, उन्नतशिर, मर्मभेदी दृष्टिपूर्ण आँखें, चंचल होंठ, मनोहर अंगभंगी····· धर्म महासभा के प्रतिनिधियों के लिए निर्दिष्ट कमरें में स्वामी विवेकानन्द मेरी आँखों में इसी रूप में प्रतिभात हुए थे·····वे संन्यासी के नाम से विख्यात हैं, परन्तु यह समर्थनीय नहीं है, क्योंकि प्रथम दृष्टि में संन्यासी की बजाय वे योद्धा ही समझे जाते थे।

27 सितम्बर को धर्म महासभा के अन्तिम अधिवेशन में स्वामीजी ने वज्रकण्ठ से उद्घोषणा की प्रत्येक जाति या प्रत्येक धर्म दूसरी जाति या दूसरे धर्मों के साथ आपस में भावों का आदान प्रदान करेगा, परन्तु अपनी-अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करेगा और अपनी-अपनी अन्तर्निहित व शक्ति के अनुसार उन्नति की ओर अग्रसर होगा। आज सभी धर्मों के झण्डों पर लिख दो "युद्ध नहीं·····सहायता," ध्वंस नहीं ·· आत्मस्थ कर लेना, भेद द्वन्द्व नहीं ·····सामंजस्य एवं शांति।"

सम्पूर्ण अमेरिका स्वामीजी की प्रशंसा से मुखरित हो उठा। स्वामीजी के बड़े बड़े चित्र उनके उद्गारों सहित नगर की वीथियों में लगे थे। जब भी लोग वहाँ से गुजरते, श्रद्धा से उनका मस्तक नत हो जाता। सभा के मध्य भी कभी वे स्थान बदलते तो लोग उनको अभिवादन करते जिसका जवाब वे अपनी मृदु मुस्कान से दिया करते। शुष्क एवम् नीरस भाषणों से उकता रही जनता केवल यह सुनकर कि अन्त में स्वामी विवेकानन्द भी इस सभा को सम्बोधित करेंगे, धैर्य पूर्वक उनकी अमृतमय वाणी की प्रतीक्षा करती। अमेरिका के प्रमुख समाचार पत्र उनके भाषणों को विशिष्ट स्थान देते। 'न्यूयार्क हेरल्ड' नामक प्रसिद्ध समाचार पत्र ने लिखा "शिकागो धर्म महासभा में विवेकानन्द ही सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं। उनका भाषण सुनकर ऐसा लगता है कि धर्म मार्ग में इस प्रकार के समुन्नत राष्ट्र (भारत) में हमारे धर्म प्रचारकों को भेजना निर्बुद्धिता मात्र है।" एक अन्य पत्र "बोस्टन इवनिंग ट्रान्सक्रिप्ट ने स्वामीजी के सम्बन्ध में लिखा "वे वास्तव में एक महापुरुष, उदार, सरल व ज्ञानी हैं। वे हमारे देश के धुरंधर विद्वानों के गुण गौरव से कहीं ऊँचे हैं।" लन्दन की "पायोनीयर" पत्रिका में श्रीयुत स्नेल जो धर्म महसभा की विज्ञानसभा के अध्यक्ष थे, ने लिखा था "हिन्दू धर्म ने इस महासभा व जन साधारण के ऊपर जिस प्रभाव का विस्तार किया है, वैसा करने में कोई भी दूसरा धर्म संघ समर्थ नहीं हुआ। हिन्दू धर्म के एकमात्र आदर्श प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द ही इस महासभा के निर्विवाद रूप सबसे अधिक लोकप्रिय व प्रभावशाली, व्यक्ति हैं·····और कट्टर ईसाई भी उनके सम्बन्ध में कह रहे हैं "स्वामीजी मनुष्य के बीच में 'अतिमानव' हैं।"

भगिनी निवेदिता ने उन्हें "घनीभूत भारत" कहते हुए ठीक ही लिखा है "जब धर्म महासभा में भाषण देने स्वामीजी उपस्थित हुए तो हिन्दुओं के धार्मिक विचार पर भाषण दे रहे थे परन्तु भाषण के अन्त में हिन्दुत्व का नव निर्माण हो चका था"

देवलोक

—स्वामी अपूर्वानन्द
अनुवादक—स्वामी ज्ञनातीतानन्द
रामकृष्ण मिशन, राजकोट

हरि महाराज का दर्शन :

नीचे उतर कर पूजनीय हरि महाराज को खोजने पर उनके सेवक महाराज ने कहा कि संध्या के बाद उनका दर्शन होगा—इस समय नहीं। श्री श्री माँ का दर्शन मिला नहीं। उससे मन बहुत दुखित तथा भारी था—हरि महाराज का भी दर्शन नहीं मिला। अशांत मन से बागबाजार में मित्र के घर गया। थोड़े समय बाद गंगा स्नान कर गंगा तीर पर प्रार्थना कर एक काली मन्दिर का दर्शन कर खूब आनन्द हुआ। संध्या के बाद बलराम मन्दिर में घुसते ही दाहिनी तरफ पूजनीय हरि महाराज जिस घर में थे, उसके सामने ही सेवक महाराज से मुलाकात हुई। यद्यपि तब तक मैंने साधुओं को देखते ही प्रणाम करना चाहिये इस शिष्टाचार का अर्जन नहीं किया था और सेवक महाराज को भी प्रणाम नहीं किया। तब भी उन्होंने कुछ समय बाद दर्शन की व्यवस्था कर दी। जब तक दरवाजे के पास खड़ा था, पूजनीय हरि महारज धीमे स्वर में क्रांतिकारियों के सम्बन्ध में बातें कर रहे थे और जिनके साथ बातें कर रहे थे वे क्रांतिकारी थे। सेवक महाराज मुझ को जब घर के भीतर ले गये तब हरि महारज दीवाल के किनारे कुरसी पर बैठे थे और जमीन पर उनके पैर के पास जो दो सज्जन युवक बैठे थे. वे लोग उच्च कक्षा के छात्र मालूम पड़े। मुझको देखते ही युवकों ने कहा—'तो हम लोग जाते हैं, दूसरे किसी दिन आ कर आपके साथ बात करेंगे। यह कहकर प्रणाम करके वे लोग चले गये।

दिव्य कांति, वृद्ध यतिराज को देखकर मैं मुग्ध हो गया। भूमि पर सिर लगाकर पाद स्पर्श कर उनको प्रणाम किया। उनके फूले हुए दोनों पैर एक गुलाबी रंग के कुशन पर रखे हुए थे। मेरे महापुरुष महाज का परिचय दे कर बेलूरमठ से आया हूँ, ऐसा कहते ही प्रसन्न हो कर मेरी तरफ देखते हुए पास की छोटी बेंच पर बैठने के लिए कहा। मैं ठीक उनके सामने मुख करके बैठा। उनकी दृष्टि में मानो एक सम्मोहिनी शक्ति थी। उन्होंने पहले ही मेरे मुख की तरफ देखते हुए जिज्ञासा की 'तुम किसी गुप्त राजद्रोही दल से सम्बन्धित हो ?' इस प्रश्न के लिए मैं बिल्कुल प्रस्तुत नहीं था। मेरे मन के ऊपर एक विद्युत की तरह एक विचार तरंग कौंध गयी। सही बात कहूँगा कि झूठ बात कहूँगा। साथ-ही-साथ याद आया कि ये श्री रामकृष्णदेव के अन्तरंग पार्षद संन्यासी—ये निश्चय ही मेरे जीवन और समिति की कोई हानि नहीं करेंगे। यह विचार मेरे मन में आते ही मैंने सिर नीचे कर के कहा : 'महाराज मैं एक राजद्रोही गुप्त समिति का एक सदस्य हूँ।' वे मेरे उत्तर से प्रसन्न हुए। और प्रश्न मुख से मुझसे 'तुम लोगों की समिति के नियमानुसार अपना या समिति का गुप्त परिचय देना निषेध है। तो तुमने मेरे पास अपना परिचय क्यों दिया ? मैंने कहा : 'समिति का यह नियम जो है वह आत्मरक्षा के लिए है। गुप्त समिति की यह प्रतिज्ञा समिति के कार्यकलाप और सदस्यों के परिचय गुप्त रखने के लिए है और इस प्रतिज्ञा को सदस्य लोग प्राण दे कर भी पालन करते हैं, किन्तु मैंने एफ ऐसे व्यक्ति के पास इस प्रतिज्ञा को भंग किया है, जो कि इस समिति एवम् मेरे जीवन की कोई भी हानि नहीं करेंगे ? इसके अतिरिक्त श्रीरामकृष्णदेव के संन्यासी पार्षद के पास इस साधारण जीवन को

बचाने के लिए मिथ्या बोलने की मेरी इच्छा नहीं हुई, इसका चाहे जो परिणाम हो।' वे मेरी बात से खूब प्रसन्न होकर मुझे स्नेह से अपने और पास बेंच पर बिठा कर और नाना प्रकार की बातें करने लगे। श्री श्री माँ का दर्शन नहीं मिला इससे स्वयम् को अयोग्य मान कर मन खूब खराब था। उस बात के उत्तर में उन्होंने ममतापूर्ण स्वर में कहा: 'श्री श्री माँ साक्षात जगन्माता, उनका दर्शन क्या आसान बात है? उन्होंने तुम्हारे अन्दर की व्याकुलता बढ़ाने के लिए आज दर्शन नहीं दिया। बाद में उनका दर्शन मिलेगा। उसके लिए दुख मत करो। तुम्हारे मन में उनका अभाव बोध बढ़ने पर निश्चित समय में तुमको दर्शन देंगी। खूब रो-रो कर प्रार्थना करो। वे प्रसन्न हो कर अवश्य ही समय होने पर दर्शन देंगी।' इस तरह से बहुत सांत्वना दी। श्री श्री माँ का दर्शन पाने के लिए इतनी बातें हैं, इतनी तैयारी का प्रयोजन है, ऐसी मेरी धारणा नहीं थी। उनकी बातों से मन शांत हुआ। मैं उनके पास में ही बेंच पर बैठा था। उन्होंने कुछ समय बाद कहा: 'तुम्हारा हाथ देखूँ।' मैंने सोचा था कि वे ज्योतिषियों की तरह हाथ की रेखाएँ देखेंगे—इसलिये मैंने उनके सामने हाथ बढ़ा दिया, किन्तु उन्होंने मेरे दाहिने हाथ को और पास खींच कर अपने दाहिने हाथ पर रख कर 'तुम्हारे हाथ का वजन देख रहा हूँ' ऐसा कह कर मानो वे मेरे दाहिने हाथ का बार-बार वजन करने लगे। उनके स्पर्श से मेरे मन में विशेष भावान्तर हुआ और आनन्द हो रहा था। वे थोड़े समय तक मेरे हाथ का वजन देख कर बोले: 'तुम्हारा होगा, हाथ भारी नहीं है। हम लोग हाथ का वजन देखकर समझ जाते हैं कि कौन कैसा आदमी है—ठाकुर ने हम लोगों को सब सिखा दिया था।' मैं और क्या उत्तर देता, कुछ भी समझ नहीं पाया था। केवल आवाक् हो कर उनकी सहानुभूतिपूर्ण बातों को सुन रहा था। ठीक उसी समय सेवक महाराज ने घर में घुस कर एक दीप बत्ती जला दी और सफेद प्रकाश को बुझा दिया। उन्होंने साथ ही साथ होंठों पर अंगुली रख कर कहा: 'मुझे और बातें करने से मना किया गया है, जाने के लिये कहा।' मैंने उनको भूमिष्ठ हो कर प्रणाम किया तथा घर से चला आया।

दूसरे दिन प्रातः काल गंगा स्नानादि करके श्री श्री माँ के दर्शन के लिए गया, किन्तु उनका दर्शन हुआ नहीं। साधु महाराज ने कहा कि, उस दिन प्रातःकाल विशेष कारण से पुरुष भक्तों को दर्शन नहीं हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल के लिए कहा। पूज्य सारदानन्द महाराज के दर्शन भी उतने सवेरे नहीं होगा, क्योंकि वह ध्यान कर रहे थे। पूज्यनीय राजा महाराज के हरि महाराज का दर्शन करने के लिए वहाँ मन्दिर गया। पहले राजा महाराज के दर्शन के लिए दूसरी मंजिल पर गया। एक सेवक महाराज दिखाई पड़े। उन्होंने कहा कि, राजा महाराज का शरीर ठीक नहीं है—दर्शन नहीं होगा। कल दिन जिस स्थान पर दर्शन किया उस स्थान को प्रणाम किया, बाद में पास के बड़े कमरे में जहाँ पर ठाकुर ने भक्तों के साथ अनेक लीलाएं की थीं उसी कमरे में प्रवेश कर ठाकुर को प्रणाम किया। बलराम मन्दिर मुझे महापुण्य स्थान मालूम पड़ा। श्री भगवान का अपूर्व लीला क्षेत्र! खूब आनन्द चित्त से हरि महाराज के दर्शन को गया—वह नहीं हुआ। सेवक महाराज ने कहा संध्या को दर्शन हो सकता है। अशांत मन से विभिन्न मन्दिरों दर्शन करके चला आया—घूम-घूम कर विभिन्न मन्दिरों के दर्शन करने से मन बहुत शांत हुआ।

(क्रमशः)

शंकर चरित्र

—इन्द्रदयाल भट्टाचार्य
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मिशन, रायपुर (म०प्र०)

एक दिन गिरि नामक एक शान्त-शिष्ट ब्राह्मण ने आकर शंकर का शिष्यत्व ग्रहण किया। आते ही उन्होंने गुरुसेवा का पूरा भार अपने कन्धों पर ले लिया ताकि अन्य गुरु भाइयों को साधन-भजन तथा अध्ययन का अवसर मिले। गिरि सर्वदा ही गुरु के लिए आवश्यक वस्तुओं के संग्रह, स्नान के समय उनके वस्त्र ले जाने और उतारे वस्त्र को धोने व सुखाने आदि कार्यों में लगे रहते थे। वे बातें नहीं करते, पर छाया के समान गुरु के साथ-साथ रहते, मानो गुरुसेवा के लिए ही उन्होंने जीवन-धारण किया हो। शास्त्रों के प्रति उनमें कुछ विशेष रुझान नहीं दीख पड़ता था।

शंकर के शिष्यगण उन दिनों जी-जान से शास्त्र अध्ययन तथा साधना में लगे हुए थे। मठ में ज्ञानचर्चा तथा ध्यान-धारण का मानो एक प्रबल स्रोत बह रहा था। परन्तु गिरि इन सबसे उदासीन, गुरु की सेवा में ही निरत रहते। अतः ज्ञानाभिमानी गुरुभ्रातागण उन्हें थोड़ी अवज्ञा की दृष्टि से ही देखा करते थे। उन लोगों का मनोभाव कुछ इस तरह का था, "गिरि तो मूर्ख है; वह और कर ही क्या सकता है? शारीरिक परिश्रम करके गुरु की थोड़ी-बहुत सेवा के अतिरिक्त उसके लिए करणीय है भी क्या?"

एक दिन शिष्यों के वेदान्त-पाठ के लिए प्रस्तुत होने पर शंकर ने कहा, "तुम लोग थोड़ी प्रतीक्षा करो। गिरि नदी पर कपड़े धोने गया है, उसके आने पर पाठ आरम्भ होगा।" शिष्यों में से कोई तो इस बात पर नाराज हुए और किसी-किसी ने मुँह खोलकर गिरि के बारे में कुछ अवज्ञासूचक टिप्पणियाँ भी कर दीं। गुरुभक्ति तथा गुरुसेवा—ज्ञानप्राप्ति का एक प्रधान साधन है; परन्तु आचार्य को यह देखकर खेद हुआ कि ये लोग वेद-वेदांग में पारंगत तपस्वी होकर भी अहंकार में ऐसे मत्त हैं कि गुरुसेवा की ही अवज्ञा कर रहे हैं। वे बिना कुछ कहे स्थिर बैठे रहे और मन ही मन उन्होंने गिरि को ब्रह्मविद्या प्रदान कर दी। गिरि नदी से कपड़े धोकर लौट रहे थे। सहसा उन्हें अनुभव हुआ मानो उनकी अनुभवशक्ति के ऊपर से एक आवरण उतर गया हो और उन्हें सम्पूर्ण जगत् चैतन्यमय बोध होने लगा। गुरुकृपा से क्षण भर में ही उन्हें सर्व शास्त्रों का सार विदित हो गया और समस्त साधनाओं के फल की उपलब्धि हो गयी। उनका मुखमण्डल ब्रह्मतेज से उद्भासित हो उठा। वे आचार्य के समीप पहुँचे और वेदांत का सारमर्म अभिबोधक कुछ श्लोकों को तोटक छन्द में मन ही मन रचना कर उनकी आवृत्ति करने लगे। गुरुभ्रातागण अवाक् रह गये। उन लोगों का अहंकार चूर्ण हो गया। तब से गुरुसेवा-परायण गिरि का नाम हुआ—तोटकाचार्य।

अंतरंगों से मिलन

अब उनकी लीला के सहायक सभी अन्तरंग शिष्य उनके पास आ जुटे थे। पद्मपाद, सुरेश्वर, हस्तामलक, तोटकाचार्य, समित्पाणि, चिद्विलास,

ज्ञानकन्द, विष्णुगुप्त, शुद्धकीर्ति, भानुमरीचि, कृष्णदर्शन, बुद्धिविरिंचि, पादशुद्धान्त, आनन्दगिरि आदि ज्ञानी, भक्त, पण्डित, सुलेखक, वाग्मी गुरुगतप्राण शिष्यगण अग्निमंत्र में दीक्षित होकर गुरुकार्य के साधन में अपना जीवन न्योछावर कर चुके थे। उन लोगों ने साधना करके ब्रह्मानन्द की अनुभूति की और सर्व शास्त्रों में पारंगत होकर अद्वैत-मत-पोषक अनेक ग्रन्थ लिखे।

प्रतिज्ञा-पालन

आचार्यदेव ने गृहत्याग करते समय अपनी माता के समक्ष तीन प्रतिज्ञाएँ की थीं। अब उन्हीं को पूरा करने का समय आ गया था। एक दिन अपने मुख में मातृदुग्ध का स्वाद पाकर वे समझ गये कि माँ उनका स्मरण कर रही हैं। शिष्यों को मठ में छोड़ वे योगबल के द्वारा आकाश मार्ग से माँ के पास जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने पाया कि माँ का मृत्युकाल आसन्न है। काफी काल बाद पुत्र के मुख का अवलोकन कर उनकी माता अतीव आनन्दित हुईं। साक्षात् भगवती ज्ञान से शंकर माँ की सेवा में लग गये। माँ का सारा खेद मिट गया। कुछ दिनों बाद अन्तिम क्षण आ पहुँचने पर शंकर ने उनके इष्टदेव विष्णु का स्मरण किया। शंकर की प्रार्थना पर विष्णु ने प्रकट होकर दर्शन दिया। विशिष्टा देवी ने उस मूर्ति का दर्शन करते हुए वैकुण्ठलोक को प्रस्थान किया।

शंकर ने जब अपने सम्बन्धियों को माँ के अन्तिम संस्कार में सहायता देने का अनुरोध किया, तो सहायता तो दूर, वे लोग शंकर को अनेक कटु बातें सुनाते हुए उनके माता की निन्दा करने लगे। उन लोगों ने सोचा कि ये कम आयु में नासमझी के कारण संन्यासी हो गये थे, पर अब गृहस्थ होकर उन लोगों द्वारा भोगे जा रहे अपनी पैतृक धन-सम्पदा को वापस ले लेंगे। शंकर अपने सम्बन्धियों का आचरण देख व्यथित हुए, विशेष कर माँ की निन्दा सुनकर नाराज भी हुए। उन्होंने अकेले घर के प्रांगण में ही माँ के मृतदेह का संस्कार किया और सम्बन्धियों को दण्डित करने हेतु तीन अभिशाप दिये, जो निम्नलिखित हैं:

(१) वे अपने घर के प्रांगण में ही मृतकों का संस्कार करेंगे।

(२) कोई भी संन्यासी उनका अन्न ग्रहण नहीं करेंगे।

(३) वे लोग वेदपाठ नहीं कर सकेंगे।

अभिशाप की बात सुनकर उन लोगों को होश आया। वे लोग अब भयभीत होकर शंकर के चरणों में गिर पड़े और शाप-मुक्ति के लिए अनुनय-विनय करने लगे। दयामय आचार्यदेव ने उन्हें वेदपाठ का अधिकार देकर तीसरे शाप का मोचन कर दिया। कालड़ी ग्राम के ब्राह्मण अब भी बाकी दो अभिशापों को मानकर जीवन यापन करते हैं।

अब शंकर केरल प्रान्त में भ्रमण करते हुए वहाँ की सामाजिक उन्नति के लिए विविध प्रकार के सदाचारों का प्रवर्तन करने लगे। गुरुगत प्राण शिष्यगण भी उनसे आ मिले और उनके कार्य में सहयोग देने लगे।

पद्मपाद का तीर्थभ्रमण

शृंगेरी मठ में जब संन्यासीगण साधना व स्वाध्याय में उन्मत्त हो रहे थे, तभी पद्मपाद के मन में निरालम्ब निराश्रय परिव्राजक के रूप में विभिन्न तीर्थों का पर्यटन करने की इच्छा बलवती हो उठी। आचार्यदेव पहले तो उनसे सहमत नहीं हुए, परन्तु शिष्य का प्रबल आग्रह देखकर अन्ततः राजी हो गये। पद्मपाद गुरु से विदा लेकर चल पड़े। उत्तर भारत के तीर्थों का दर्शन करने के पश्चात् वे दक्षिणापथ को आये। वहाँ के भी तीर्थों का दर्शन करते हुए रामेश्वर जाने के मार्ग में वे श्रीरंगम पहुँचे। वहाँ उनके मामा का घर था। दो-एक दिन विश्राम करने के निमित्त वे मामा के

घर में अतिथि हुए।

भ्रमण के दौरान भी पद्मपाद ने शास्त्रचर्चा का बिल्कुल परित्याग नहीं किया था। दो-एक ग्रन्थ वे सदा अपने साथ रखते थे। अद्वैत वेदान्त पर उनका अपना रचित एक ग्रन्थ भी उनके पास था। उनके मामा ने वह ग्रन्थ पढ़ा। वे कुमारिल भट्ट के मतावलम्बी प्रभाकर के शिष्य थे। भानजे के ग्रन्थ में अपने सम्प्रदाय के मत का पूर्णरूपेण खण्डन देखकर वे ईर्ष्या से जल उठे, परन्तु अपना मनोभाव गुप्त रखते हुए उन्होंने उस ग्रन्थ की खूब प्रशंसा की।

साम्प्रदायिकता मनुष्य का धर्म तो नष्ट करती ही है, साथ ही कभी-कभी उसे पशु से भी अधम कर डालती है। अपने मत के विरोधी ग्रन्थ का अस्तित्व मामा के हृदय में शूल के समान विद्ध हो गया। उनके मन में आया कि इस ग्रन्थ को नष्ट किये बिना मानो उनका जीवन ही व्यर्थ हो जाएगा। शीघ्र ही एक मौका भी आ पहुँचा। पद्मपाद ने निश्चय किया कि वे रामेश्वर-दर्शन करके पुनः श्रीरंगम लौटेंगे और वहाँ से जाकर गुरुदेव के साथ हो लेंगे। मामा बोले, "इन पुस्तकों को साथ-साथ ढोने से क्या लाभ ? यहीं पर रख जा सकते हो।" पद्मपाद ने मामा का प्रस्ताव मान लिया। मामा अब स्वमतविरोधी ग्रन्थ को पाकर बड़े ही आनन्दित हुए। पद्मपाद के चले जाने पर मामा अब उस ग्रन्थ को नष्ट करने का उपाय सोचने लगे। लोगों की आँख में उन्हें धूल झोंकनी होगी विशेषकर तेजस्वी तपस्वी भानजे को कुछ कहकर बहलाना होगा। यही सब तरह-तरह से विचार करने के बाद आखिरकार ग्रन्थ को नष्ट करने हेतु उन्होंने ईर्ष्या की ज्वाला से अपने घर में ही आग लगा दी। घर से जब आग की लपटें उठने लगीं तब वे दिखावटी शोक में चीत्कार करते हुए ग्रामवासियों को सहायता के लिए बुलाने लगे।

पद्मपाद के रामेश्वर दर्शन कर लौट आने पर मामा उनके समक्ष ग्रन्थ के लिए बड़ा शोक व्यक्त करने लगे। पद्मपाद ने कहा, "उस ग्रन्थ के लिए आप इतना शोक मत कीजिए। मैं अनायास ही पुनः उसकी रचना कर सकता हूँ।" यह बात सुनकर मामा बड़े ही भयभीत हुए। हाय ! जिस शत्रु का संहार करने के लिए उन्होंने अपने घर में आग लगा दी, उसका मूल तो बचा ही रह गया। अब उस जड़ को भी उखाड़ डालने के निमित्त उन्होंने पद्मपाद के भोजन में एक तरह का विष मिला दिया। इससे उनका मस्तिष्क इतना दुर्बल हो गया कि उनमें पुस्तक लिखने की क्षमता नहीं रह गयी। गुरु के उपदेश पर ध्यान दिये बिना अपनी बुद्धि का अनुसरण करने का यह फल देखकर पद्मपाद बड़े ही लज्जित और मर्माहत हुए।

वे निस्तेज और अति दुखी होकर केरल प्रदेश में गुरु के पास जा पहुँचे। त्रिकालज्ञ आचार्यदेव शिष्य की इस दुर्दशा पर बड़े व्यथित हुए। पद्मपाद ने एक बार अपना ग्रन्थ पढ़कर गुरुदेव को सुनाया था। श्रुतिधर आचार्य को वह पूरा का पूरा कण्ठस्थ था। पद्मपाद को यह ज्ञात होने पर उन्होंने आनन्दपूर्वक गुरुदेव से सुनकर पुनः वह ग्रन्थ लिख डाला।

शंकर की अद्भुत् स्मरणशक्ति के विषय में और भी एक कथा है। केरल के राजा ने तीन नाटकों की रचना की थी। शंकर के संन्यासी होने के पूर्व राजा ने वे ग्रन्थ पढ़कर उन्हें सुनाये थे। काफी काल बाद राजा के साथ पुनः साक्षात्कार होने पर शंकर को पता चला कि वे नाटक नष्ट हो चुके हैं। उन्हें वह पूर्ण रूप से कण्ठस्थ था। कहते हैं कि राजा ने उनसे वे नाटक पुनः लिखवा लिये थे। (क्रमशः)

—स्वामी निखिलेश्वरा
रामकृष्ण आश्रम, रा

[शिकागो विश्वधर्म-महासभा में स्वामी विवेकानन्द के योगदान की शतवार्षिकी के अवसर पर भारत
ने १९९३ ई० को भारत में 'चेतना-वर्ष' के रूप में मनाने का संकल्प लिया है। इसी सन्दर्भ में स्वामी निखिलेश्वरा
जी महाराज ने प्रस्तुत निबन्ध लिखा है जो प्रासंगिक और प्रेरक है।—सं०]

भारतमाता के अन्तिम छोर पर तीन सागरों से घिरे उस सुन्दर स्थान में जहाँ माता कन्याकुमारी का अनुपम मन्दिर है, एक संन्यासी समस्त भारत का परिभ्रमण समाप्त कर आया और एक छोटे शिशु की भांति माता के विग्रह के सामने लोट-पोट होने लगा। मानों उसके जीवन की साध पूरी हुई। माता की पूजा समाप्त कर वह मन्दिर के बाहर आया। विचारों में खोया हुआ वह समुद्र के किनारे खड़ा था कि उसकी दृष्टि जल में कुछ दूर पर स्थित एक शिलाखण्ड पर पड़ी। वह जान की परवाह किये बिना समुद्र में कूद पड़ा और तैरकर उस चट्टान पर जा पहुँचा और गहरे ध्यान में निमग्न हो गया। किन्तु यह कोई साधारण देवी-देवता पर का ध्यान नहीं था। यह ध्यान था भारत-माता का। भारत का गौरवमय अतीत, भारत का अन्धकारमय वर्तमान और भारत के सुनहरे भविष्य के विचारों में वह डूब गया। भारत की आम जनता की गरीबी, दुर्दशा, नारियों पर के अत्याचार, धर्म के नाम पर पाखण्ड आदि को जो उसने अपनी सगी आँखों से देखा वह सब उसके मानसपटल पर बरबस आ गया। भारत के उस अन्तिम शिलाखण्ड पर बैठे हुए इस एकाकी युवा संन्यासी का हृदय भारत के तिरस्कृत और पद-दलित लोगों की आहों से व्यथित हो उठा। उसकी हृतन्त्री के तार भारत की नंगी, भूखी अशिक्षित जनता की बेबसी के रागों में बंधे हुए थे। देश में चारों ओर व्याप्त दरिद्रता का नग्न आर्तनाद उन तारों को झनझना देता और उसे प्रतीत होता मानो कोई उसके हृदय को निचोड़े डाल रहा है। इस शिलाखण्ड पर बैठकर एक सन्त एक महान देशभक्त के रूप में परिणत हो अपनी मुक्ति के लिए लालायित संन्यासी 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' समस्त संसार के कल्याण में निमग्न महापुरुष में परिवर्तित हो गया। आज समस्त विश्व उन स्वामी विवेकानन्द के नाम से अभ्यर्थना करता है।

इस समय की अपनी मानसिक स्थिति का वर्णन करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने बाद में अपने एक पत्र में लिखा था; "इन सब विचारों ने, और विशेषकर देश की गरीबी और अज्ञानता के विचारों ने मेरी नींद हर ली। कन्याकुमारी में, माता के मन्दिर में बैठे हुए मुझे एक उपाय सूझ पड़ा—"अच्छा, हम लोग इतने संन्यासी इधर-उधर घूमते रहते हैं, लोगों को दर्शन और ज्ञान की शिक्षा देते फिरते हैं—यह सब पागलपन है। क्या हमारे गुरुदेव (श्रीरामकृष्ण) यह नहीं कहा करते थे कि 'भूखे भजन न होइ गोपाला'? ये बेचारे गरीब केवल अज्ञान के कारण पशुओं का-सा जीवन बिता रहे हैं। हम युगों से उनका रक्त चूसते रहे हैं, उन्हें पैरों तले रौंदते रहे हैं। हम एक राष्ट्र के रूप में अपना व्यक्तित्व खो चुके हैं और यही भारत की सारी गड़बड़ी का कारण है। हमें राष्ट्र को इसका खोया हुआ व्यक्तित्व पुनः प्रदान करना है और जनसमुदाय को ऊपर उठाना है।"

भारतीय राष्ट्रीय चेतना के इतिहास में कन्या-कुमारी का यह शिलाखंड जिस पर बैठकर स्वामी जी ने ठीक सौ वर्ष पूर्व ध्यान किया था, अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यहीं पर स्वामीजी समुद्र पार कर विदेश में जाकर भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिक ज्ञान के विनिमय द्वारा अपने देशवासियों के लिए वहाँ का धन और तकनीक लाने की योजना बनाते हैं। युगों से प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न भारत की राष्ट्रीय चेतना स्वामी